CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों कब और कैसे?

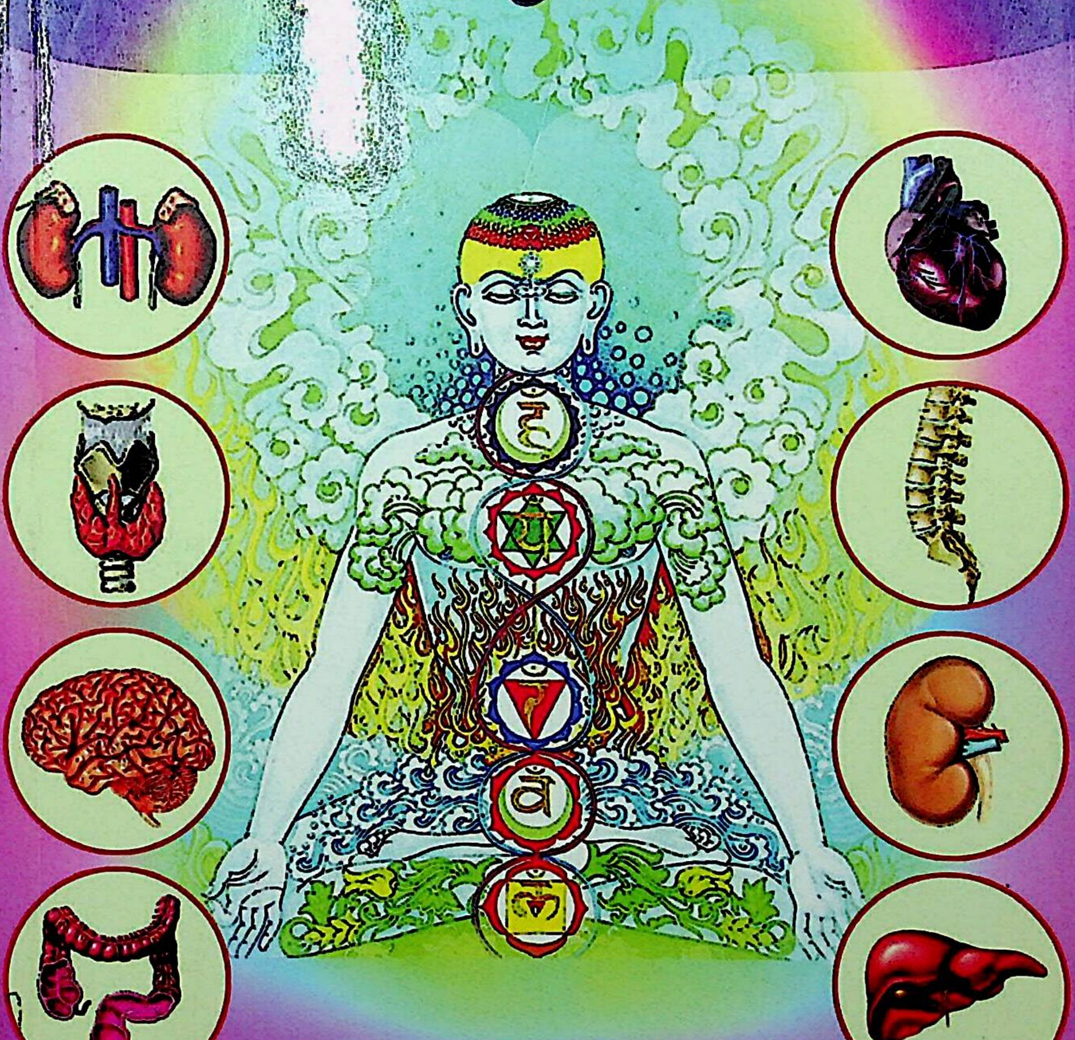

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.

परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

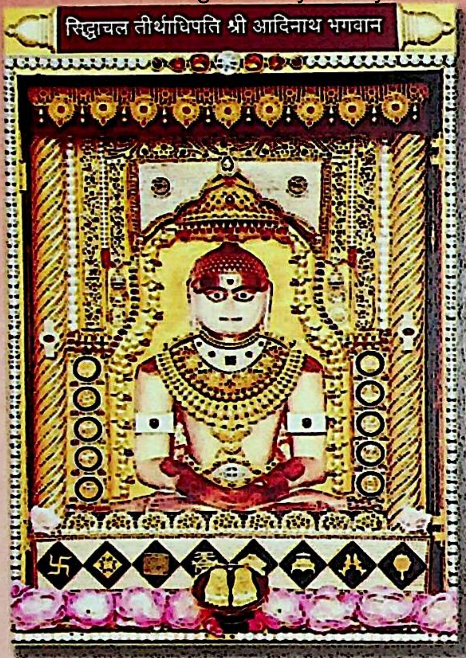

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाड़ा दादाबाड़ी (जोधपुर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-21

2012-13

R.J. 241 / 2007

श्री ग० व० दि० जैन संस्थान
पुस्तक क्र. 5607
नरिया वाराणसी

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-21

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

कृपा वृष्टि : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.
मंगल वृष्टि : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
आनन्द वृष्टि : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.
प्रेरणा वृष्टि : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
वात्सल्य वृष्टि : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.
स्नेह वृष्टि : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)
ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014
प्रतियाँ : 1000
सहयोग राशि : ₹ 50.00
(पुन: प्रकाशनार्थ)
कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी
कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता
मुद्रक : Antartica Press, Kolkata
ISBN : 978-81-910801-6-2 (XXI)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदयार्पण

जिन्होंने

विश्व को विकास की बुलंदियों पर पहुँचाया।

आयुर्वेद और योग का जग को राज बताया।

प्राकृतिक तथ्यों को आधुनिकता का जामा पहनाया।

एक स्वस्थ जीवन शैली देने हेतु,

अपना जन्म खपाया।।

नव्य युग के उन सभी सत्यान्वेषी

खोज कर्त्ताओं को

सादर समर्पित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सज्जन की सौगात

आज आवश्यकता है
धर्म और विज्ञान एक साथ चले
भोग और योग की पारस्परिक निर्भरता बढ़े
प्राच्य विद्याओं के नवीन आयाम खुलें
जिससे
पौराणिक विद्याएँ लुप्त न हो
सांस्कृतिक पहलू विस्मृत न हो
विकास की गति बाधित न हो
इसी पथ पर एक प्रयास है
चिकित्सा पद्धति में मुद्राओं का सविधि प्रयोग
आसन और प्राणायाम का हो नित्य उपयोग
आयुर्वेद आदि शास्त्रीय विधियों का
विज्ञान के साथ नव्य संयोग
इन्हीं सत्प्रयासों के अभिवर्धनार्थ
एक सम्यक् दिशा...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक अनुमोदन

गढ़ सिवाना निवासी

पूज्य नानाजी स्व. श्री भबूतमलजी–सुन्दर बाई छाजेड़

मामाजी श्री केसरीचंद जी–विमल देवी

श्री भगवानचन्दजी–शान्ति देवी

श्री सांवलचन्दजी–शकुन्तला देवी

श्री अशोक कुमार जी–शशिकला

के उपकार स्मरणार्थ

भाणेज

श्री शांतिलालजी कंकु चौपड़ा

जालौर हॉल बेंगलौर निवासी

की ओर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुत यात्रा के अनन्य राही
श्री भबूतमलजी सुन्दर देवी छाजेड़, गढ़ सिवाना

व्यक्ति के जीवन विकास की श्रृंखला में अनेक धाराएँ प्रवाहित होती है। वे विविध धाराएँ जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों को प्रभावित करती हैं। कुछ व्यावहारिक स्तर पर, कुछ व्यापारिक स्तर पर, कुछ पारिवारिक स्तर पर, तो कुछ धार्मिक स्तर पर। बैंगलोर निवासी श्री शान्तिलालजी चौपड़ा के धार्मिक एवं व्यावहारिक जीवन पर अपने ददिहाल पक्ष का जितना प्रभाव रहा है उतना ही अपने ननिहाल पक्ष का भी।

सिवाना निवासी धर्मानुरागी श्री भबूतमलजी छाजेड़ सत्य प्रेमी, न्याय प्रिय, जिन धर्म अनुयायी होने के साथ महात्मा गांधीजी के समर्थक थे। आजादी के कई आंदोलनों में उन्होंने गांधीजी का साथ दिया। सत्य निष्ठा उनके जीवन का प्राण था तो प्रभु भक्ति उनका श्वासोश्वास। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दर बाई करुण हृदयी तथा स्नेह एवं ममता की प्रतिमूर्ति थी। सिवाना के हर एक साधर्मी के प्रति उनके भीतर आत्मीय भाव था। यही वजह थी कि उनके ईर्द-गिर्द अड़ोस-पड़ोस के लोगों का तांता लगा रहता था।

बड़ी बहू विमला देवी के अल्पायु में देहावसान के बाद उनके पाँच बच्चों को आपने मातृवत स्नेह से पल्लवित किया। इसी के साथ उन्हें हर प्रकार की शिक्षाएँ भी दी। आप ही के संस्कारों के कारण आपकी पोती नारंगी उर्फ निशा संयम पथ पर चलने का साहस कर पाई और आज खरतरगच्छ के श्रुतांगन में दिव्य दीप बनकर साध्वी सौम्य गुणा के नाम से प्रकाशित हो रही है। इस श्रुत श्रृंखला की लेखिका वे ही हैं।

आपके चार पुत्र केसरीचंदजी, भगवानचंदजी, सांवलचन्दजी और अशोक जी का समाज में प्रतिष्ठित स्थान है। केसरीचंदजी और भगवानचंदजी यद्यपि आज इस दुनिया में नहीं है परंतु उनके शासन समर्पण एवं पारिवारिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समरसता ने सम्पूर्ण परिवार को एकसूत्र में बांधे रखा है।

अपनी बहन सुभटी बाई के प्रति भी अपने सम्पूर्ण दायित्वों को निभाया है। इसी का सुपरिणाम है कि उन्हीं के सुपुत्र श्री शान्तिलालजी अपनी बहन महाराज के प्रति विशेष रूप से श्रद्धान्वित हैं और उनसे अन्तरंग जुड़ाव रखते हैं।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला आपके पूज्य भावों एवं श्रुतभक्ति की भूयशः अनुमोदना करते हुए इनके लिए उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उपलब्धियों की भावना रखता है।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक अनुमोदन

जीवाणा (जालोर) हाल बैंगलोर निवासी धर्मनिष्ठ

धर्मनिष्ठा मातु श्री सुबटी देवी, स्व. पिता श्री

छगनराजजी की पावन प्रेरणा से

सुपुत्र

शान्तिलाल, रायचंद, कानराज, उच्छवराज

सुपौत्र

मुकेश, रवीन्द्र, चन्दन, मनीष, दीपक, सुमित,

मयंक, पीयूष, यश

प्रपौत्र

कुशल, राज, संयम, दीप कंकु चौपड़ा परिवार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुत सर्जन की परम्परा के पुण्यभागी श्री शांतिलालजी चौपड़ा परिवार

बैंगलोर अपनी प्राकृतिक शीतलता एवं सौंदर्य के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यह शहर धार्मिक संस्कार, बृहद्काय जैन पाठशाला, साधना-आराधना के वृद्धिंगत माहौल के लिए भी जाना जाता है। आराधना की अपेक्षा इस प्रदेश को पंचम आरे का महाविदेह कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस धर्मनगरी के निवासी हैं जिनधर्म रसिक श्री शांतिलालजी चौपड़ा।

मूलतः जीवाणा (जालोर) निवासी शांतिलालजी को धार्मिक संस्कार अपनी जन्मभूमि से ही प्राप्त हुए हैं। श्रद्धा सम्पन्न पिताश्री छगनलालजी का जीवन दिगम्बर साधना पद्धति से प्रभावित था। माता सुभटी बाई की आचरण चुस्ती एवं दृढ़ता ने बचपन से ही आप चारों भाइयों के लिए एक प्रेरणादीप का कार्य किया। सबसे ज्येष्ठ श्री शांतिलालजी हैं। आपसे छोटे तीन भाई रायचंदजी, कानराजजी एवं उच्छवराजजी भी आपश्री के समान धर्मनिष्ठ सुश्रावक हैं।

शांतिलालजी ने अपने जीवन में माता-पिता के बाद सर्वोच्च स्थान धर्म को दिया है। श्रावकाचार के पालन में आप बड़े चुस्त हैं। प्रतिदिन सामायिक, नवकारसी, प्रभु पूजा, जाप आदि नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करते हैं। आपका जीवन आडम्बर एवं दिखावे से अत्यन्त दूर तथा आध्यात्मिक भक्ति स्रोतों से सदैव सराबोर रहा है। सामूहिक आयंबिल शाला, सामूहिक वर्षीतप, तीर्थयात्रा, धार्मिक आयोजन आदि में आप हमेशा अग्रणी रहते हैं तथा विगत कुछ वर्षों से तप साधना एवं स्वाध्याय से अधिक जुड़ गए हैं।

स्वाध्याय निमग्ना साध्वी सौम्यगुणाजी आपके ममेरी बहन है। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होने पर भी गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एवं अपनी बहन महाराज के दर्शनार्थ आने की पूर्ण भावना रखते हैं। बहिन म.सा. जब से शोध अध्ययन में जुटी हुई हैं तभी से उनकी रचनाओं को प्रकाशित करवाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की आपकी मनोभावना थी जो अब साकार होने जा रही है।

कई वर्षों से आप अपनी आय का नियत हिस्सा श्रुतज्ञान की समृद्धि हेतु अलग रखते हैं।

बैंगलोर, जीवाणा, जालोर आदि क्षेत्रों में कंकु चौपड़ा परिवार की गिनती धर्मपरायण परिवारों में होती है। आप अपने बहन महाराज के विराट शोध कार्य को विश्वोपलब्ध करवाने हेतु एक वेबसाइट भी बना रहे हैं। जैन विधि-विधानों की इतनी विशद जानकारी पहली बार Internet पर उपलब्ध करवाने के लिए सकल जैन समाज युग-युगों तक आपका आभारी रहेगा।

आप सदैव इसी तरह तन-मन एवं धन से धर्म मार्ग पर गतिशील रहें। रत्नत्रयी की भक्ति एवं आराधना करते हुए सर्वोच्च पद को प्राप्त करें। इसी भावना के साथ सज्जनमणि ग्रन्थमाला यह कहता है–

जैन सज्जनमणि के नाम से जिसको, चिहुं दिशि में जाना जाएगा ।
उस ज्ञान गंगा को घर-घर पहुँचाने का, श्रेय आपको ही जाएगा ।
श्रुत सेवा में अनुदान आपका, चिरस्मरणीय रह जाएगा ।
युगों-युगों तक जैन संघ, आपका गौरव गाएगा।।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलाश सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति की मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सोलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सोलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सोलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्‌गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती। कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों को परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।

इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.
एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्‌गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णतः सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मनःस्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकशः जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दुःख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

I...आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलतः स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्रायः सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्रायः हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपतः प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टतः दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें–

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।

4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अत: उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

मुद्रा सम्बन्धी सातवें खण्ड में जन साधारण में प्रचलित मुद्राओं का सविधि वैज्ञानिक स्वरूप एवं उसके अप्रत्याशित लाभों की चर्चा तीन अध्यायों के आधार पर की गई है।

प्रथम अध्याय में मुद्राओं से प्रबावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव एवं मुद्रा बनाने के नियम-उपनियम बतलाए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का प्रासंगिक वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में उपसंहारात्मक है जिसमें किस रोग में कौन सी मुद्रा देती है उसका जनोपयोगी चार्ट दिया गया है।

इस प्रकार मुद्रा विधि से सम्बन्धित यह खण्ड अपने आप में अनूठे एवं अलभ्य सामग्री से परिपूर्ण है।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वन्दना की सरगम

आज से सत्रह वर्ष पूर्व एक छोटे से लक्ष्य को लेकर लघु यात्रा प्रारंभ हुई थी। उस समय यह अनुमान कदापि नहीं था कि वह यात्रा विविध मोड़ों से गुजरते हुए इतना विशाल स्वरूप धारण कर लेगी। आज इस दुरुह मार्ग के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचने में मेरे लिए परम आधारभूत बने जगत के सार्थवाह, तीन लोक के सिरताज, अखिल विश्व में जिन धर्म की ज्योत को प्रदीप्त करने वाले, मार्ग दिवाकर, अरिहंत परमात्मा के पाद प्रसूनों में अनेकश: श्रद्धा दीप प्रज्वलित करती हूँ। उन्हीं की श्रेयस्कारी वाणी इस सम्यक ज्ञान की आराधना में मुख्य आलंबन बनी है।

रत्नत्रयी एवं तत्त्वत्रयी के धारक, समस्त विघ्नों के निवारक, सकारात्मक ऊर्जा के संवाहक, सिद्धचक्र महायंत्र को अन्तर्हृदय से वंदना करती हूँ। इस श्रुतयात्रा के क्रम में परम हेतुभूत, भाव विशुद्धि के अधिष्ठाता, अनंत लब्धि निधान गौतम स्वामी के चरणों में भी हृदयावनत हो वंदना करती हूँ।

धर्म-स्थापना करके जग को, सत्य का मार्ग बताया है।
दिवाकर बनकर अखिल विश्व में, ज्ञान प्रकाश फैलाया है।
सर्वज्ञ अरिहंत प्रभु ने, पतवार बन पार लगाया है।
सिद्धचक्र और गुरु गौतम ने, विषमता में साहस बढ़ाया है।।

जिनशासन के समुद्धारक, कलिकाल में महान प्रभावक, जन मानस में धर्म संस्कारों के उन्नायक, चारों दादा गुरुदेव के चरणों में सश्रद्धा समर्पित हूँ। इन्हीं की कृपा से मैं रत्नत्रयात्मक साधना पथ पर अग्रसर हो पाई हूँ। इसी श्रृंखला में मैं आस्था प्रणत हूँ उन सभी आचार्य एवं मुनि भगवंतों की, जिनका आगम आलोडन एवं शस्त्र गुंफन इस कार्य के संपादन में अनन्य सहायक बना।

दत्त-मणिधर-कुशल-चन्द्र गुरु, जैन गगनांगण के ध्रुव सितारे हैं।
लक्षाधिक को जैन बनाकर, लहरायी धर्म ध्वजा हर द्वारे हैं।
श्रुत आलोडक सूरिजन मुनिजन, आगम रहस्यों को प्रकटाते हैं।
अध्यात्म योगियों के शुभ परमाणु, हर बिगड़े काज संवारे हैं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनके मन, वचन और कर्म में सत्य का तेज आप्लावित है। जिनके आचार, विचार और व्यवहार में जिनवाणी का सार समाहित है ऐसे शासन के सरताज, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागरसूरीश्वरजी म.सा. के चरणारविन्द में भाव प्रणत वंदना। उन्हीं की अन्तर प्रेरणा से यह कार्य ऊँचाईयों पर पहुँच पाया है।

श्रद्धा समर्पण के इन क्षणों में प्रतिपल स्मरणीय, पुण्य प्रभावी, ज्योतिर्विद, प्रौढ़ अनुभवी , इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों पर शासन प्रभावना की यशोगाथाएँ अंकित कर रहे पूज्य उपाध्याय भगवन्त श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के पाद पद्मों में श्रद्धायुक्त नमन करती हूँ। आपश्री द्वारा प्रदत्त प्रेरणा एवं अनुभवी ज्ञान इस यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहायक रहा है।

इसी श्रृंखला में असीम उपकारों का स्मरण करते हुए श्रद्धानत हूँ अनुभव के श्वेत नवनीत, उच्च संकल्पनाओं के स्वामी, राष्ट्रसंत पूज्य पद्मसागरसूरीश्वर जी म.सा. के पादारविन्द में। आपश्री द्वारा प्रदत्त सहज मार्गदर्शन एवं कोबा लाइब्रेरी से पुस्तकों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। आपश्री के निश्रारत सहजमना पूज्य गणिवर्य प्रशांतसागरजी म.सा. एवं सरस्वती उपासक, भ्राता मुनि श्री विमलसागरजी म.सा. ने भी इस ज्ञान यात्रा में हर तरह का सहयोग देते हुए कार्य को गति प्रदान की।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहशील व्यक्तित्व के नायक, छत्तीस गुणों के धारक, युग प्रभावक पूज्य कीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा. के चरण कमलों में, जिनकी असीम कृपा से इस शोध कार्य में नवीन दिशा प्राप्त हुई। आप श्री के विद्वद् शिष्य पूज्य रत्नयश विजयजी म.सा. द्वारा प्राप्त दिशानिर्देश कार्य पूर्णता में विशिष्ट आलम्बनभूत रहे।

कृतज्ञता ज्ञापन की इस कड़ी में विनयावनत हूँ शासन प्रभावक पूज्य राजयश सूरीश्वरजी म.सा. एवं मृदु व्यवहारी पूज्य वाचंयमा श्रीजी म.सा. (बहन महाराज) के चरणों में, जिन्होंने अहमदाबाद प्रवास के दौरान हृदयगत शंकाओं का सम्यक समाधान किया।

मैं भावप्रणत हूँ संयम अनुपालक, जग वल्लभ, नव्य अन्वेषक पूज्य आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से जिज्ञासाओं को उपशांत किया एवं अचलगच्छ परम्परा सम्बन्धी सूक्ष्म विधानों के रहस्यों से अवगत करवाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के स्वर्ण पुरुष, श्रुत सागर के गूढ़ अन्वेषक, कुशल अनुशास्ता, आचार्य श्री महाप्रज्ञजी एवं आचार्य श्री महाश्रमणजी के पद पंकजों में, आप श्री की सृजनात्मक संरचनाओं के माध्यम से यह कार्य अथ से इति तक पहुँच पाया है।

इसी क्रम में मैं नतमस्तक हूँ शासन उन्नायक, संघ प्रभावक, त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति पूज्य आचार्यप्रवर श्री जयंतसेन सूरीश्वरजी म.सा. के चरण पुंज में, जिन्होंने यथायोग्य सहायता देकर कार्य पूर्णाहुति में सहयोग दिया।

मैं श्रद्धाप्रणत हूँ शासक प्रभावक, क्रान्तिकारी संत श्री तरुणसागरजी म.सा. के चरण सरोज में, जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में भी मुझे अपना अमूल्य समय देकर यथायोग्य समाधान दिए।

मैं अंतःकरण पूर्वक आभारी हूँ शासन प्रभावक, मधुर गायक प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं प्रखर वक्ता प.पू. सम्यकरत्न सागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर समय समुचित समस्याओं का समाधान देने में रुचि एवं तत्परता दिखाई। सच कहूं तो

जिनके सफल अनुशासन में, वृद्धिंगत होता जिनशासन।
माली बनकर जो करते हैं, संघ शासन का अनुपालन ।।
कैलास गिरी सम जो करते रक्षा, भौतिकता के आंधी तूफानों से।
अमृत पीयूष बरसाते हरदम, मणि अपने शांत विचारों से ।।
कर संशोधन किया कार्य प्रमाणित, दिया सद्ग्रन्थों का ज्ञान।
कीर्तियश है रत्न सम जग में, पद्म कृपा से किया ज्ञानामृत पान ।।
सकल विश्व में गूंज रहा है, राजयश जयंतसेन का नाम।
गुणरत्न की तरुण स्फूर्ति से, महाप्रज्ञ बने श्रमण वीर समान ।।

इस श्रुत गंगा में चेतन मन को सदा आप्लावित करते रहने की परोक्ष प्रेरणा देने वाली, जीवन निर्मात्री, अध्यात्म गंगोत्री, आशु कवयित्री, चौथे कालखण्ड में जन्म लेने वाली भव्य आत्माओं के समान प्राज्ञ एवं ऋजुस्वभावधारिणी, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. के पाद-प्रसूनों में अनन्तानन्त वंदन करती हूँ, क्योंकि यह जो कुछ भी लिखा गया है वह सब उन्हीं के कृपाशीष की फलश्रुति है अतः उनके पवित्र चरणों में पुनश्च श्रद्धा के पुष्प अर्पित करती हूँ।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में मैं आस्था प्रणत हूँ वात्सल्य वारिधि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महतरा पद विभूषिता पूज्या विनिता श्रीजी म.सा., पूज्या प्रवर्त्तिनी चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह पुंज पूज्य कीर्तिप्रभा श्रीजी म.सा., ज्ञान प्रौढ़ा पूज्य दिव्यप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पूज्य चन्द्रकलाश्रीजी म.सा., मरुधर ज्योति पूज्य मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पूज्य मनोहर श्रीजी म.सा., मंजुल स्वभावी पूज्य सुलोचना श्रीजी म.सा., विद्या वारिधि पूज्य विद्युतप्रभा श्रीजी म.सा. आदि सभी पूज्यवर्य्याओं के चरणों में, जिनकी मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाने एवं लक्ष्य प्राप्ति में सेतु का कार्य किया।

गुरु उपकारों को स्मृत करने की इस वेला में अथाह श्रद्धा के साथ कृतज्ञ हूँ त्याग-तप-संयम की साकार मूर्ति, श्रेष्ठ मनोबली, पूज्या सज्जनमणि श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति, जिनकी अन्तर प्रेरणा ने ही मुझे इस महत् कार्य के लिए कटिबद्ध किया और विषम बाधाओं में भी साहस जुटाने का आत्मबल प्रदान किया। चन्द शब्दों में कहूँ तो

आगम ज्योति गुरुवर्य्या ने, ज्ञान पिपासा का दिया वरदान।
अनायास कृपा वृष्टि ने जगाया, साहस और अंतर में लक्ष्य का भान।।
शशि चरणों में रहकर पाया, आगम-ग्रन्थों का सुदृढ़ ज्ञान।
स्नेह आशीष पूज्यवर्य्याओं का, सफलता पाने में बना सौपान।।

कृतज्ञता ज्ञापन के इस अवसर पर मैं अपनी समस्त गुरु बहिनों का भी स्मरण करना चाहती हूँ, जिन्होंने मेरे लिए सदभावनाएँ ही संप्रेषित नहीं की, अपितु मेरे कार्य में यथायोग्य सहयोग भी दिया।

मेरी निकटतम सहयोगिनी ज्येष्ठ गुरुबहिना पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा., संयमनिष्ठा पू. जयप्रभा श्रीजी म.सा., सेवामूर्ति पू. दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा. जाप परायणी पू. तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., प्रवचनपटु पू. सम्यकदर्शना श्रीजी म.सा., सरलहृदयी पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., प्रसन्नमना पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., व्यवहार निपुणा शीलगुणा जी, मधुरभाषी कनकप्रभा श्रीजी, हंसमुख स्वभावी संयमप्रज्ञा श्रीजी, संवेदनहृदयी श्रुतदर्शना जी आदि सर्व के अवदान को भी विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

साध्वीद्वया सरलमना **स्थितप्रज्ञाजी** एवं मौन साधिका **संवेगप्रज्ञाजी** के प्रति विशेष आभार अभिव्यक्त करती हूँ क्योंकि इन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान व्यावहारिक औपचारिकताओं से मुक्त रखने, प्रूफ संशोधन करने एवं हर तरह की सेवाएँ प्रदान करने में अद्वितीय भूमिका अदा की। साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर ज्ञानोपासना के पलों में निरन्तर मेरी सहचरी बनी रही।

इसी के साथ अल्प भाषिणी सुश्री मोनिका बैराठी (जयपुर) एवं शान्त स्वभावी सुश्री सीमा छाजेड़ (मालेगाँव) को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ क्योंकि शोध कार्य के दौरान दोनों मुमुक्षु बहिनों ने हर तरह की सेवाएँ प्रदान की।

अन्तर्विश्वास भगिनी मंडल का, देती दुआएँ सदा मुझको।
प्रिय का निर्देशन और सम्यक बुद्धि, मुदित करे अन्तर मन को।
स्थित संवेग की श्रुत सेवाएँ, याद रहेगी नित मुझको।
इस कार्य में नाम है मेरा, श्रेय जाता सज्जन मण्डल को।।

इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन काल में जिनका मार्गदर्शन अहम् स्थान रखता है ऐसे जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन के निष्णात विद्वान, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के संस्थापक, पितृ वात्सल्य से समन्वित, आदरणीय डॉ. सागरमलजी जैन के प्रति अन्तर्भावों से हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करती हूँ। आप श्री मेरे सही अर्थों में ज्ञान गुरु हैं। यही कारण है कि आपकी निष्काम करुणा मेरे शोध पथ को आद्यंत आलोकित करती रही है। आपकी असीम प्रेरणा, निःस्वार्थ सौजन्य, सफल मार्गदर्शन और सुयोग्य निर्माण की गहरी चेष्टा को देखकर हर कोई भावविह्वल हो उठता है। आपके बारे में अधिक कुछ कह पाना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है।

दिवाकर सम ज्ञान प्रकाश से, जागृत करते संघ समाज
सागर सम श्रुत रत्नों के दाता, दिया मुझे भी लक्ष्य विराट।
मार्गदर्शक बनकर मुझ पथ का, सदा बढ़ाया कार्योल्लास।।

इस दीर्घ शोधावधि में संघीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए अनेक स्थानों पर अध्ययनार्थ प्रवास हुआ। इन दिनों में हर प्रकार की छोटी-बड़ी सेवाएँ देकर सर्व प्रकारेण चिन्ता मुक्त रखने के लिए शासन समर्पित सुनीलजी मंजुजी बोथरा (रायपुर) के भक्ति भाव की अनुशंसा करती हूँ।

अपने सद्भावों की ऊर्जा से जिन्होंने मुझे सदा स्फुर्तिमान रखा एवं दूरस्थ रहकर यथोचित सेवाएँ प्रदान की ऐसी स्वाध्याय निष्ठा, श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मृति की इस कड़ी में परमात्म भक्ति रसिक, सेवाभावी श्रीमती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शकुंतलाजी चन्द्रकुमारजी (लाला बाबू) मुणोत (कोलकाता) की अनन्य सेवा भक्ति एवं आत्मीय स्नेहभाव की स्मृति सदा मानस पटल पर बनी रहेगी।

इसी कड़ी में श्रीमति किरणजी खेमचंदजी बांठिया (कोलकाता) तथा श्रीमती नीलमजी जिनेन्द्रजी बैद (टाटा नगर) की निस्वार्थ सेवा भावना एवं मुद्राओं के चित्र निर्माण में उनके अथक प्रयासों के लिए मैं उनकी सदा ऋणी रहूँगी।

बनारस अध्ययन के दौरान वहाँ के भेलुपुर श्री संघ, रामघाट श्री संघ तथा निर्मलचन्दजी गांधी,कीर्तिभाई ध्रुव, अश्विन भाई शाह, ललितजी भंसाली, धर्मेन्द्रजी गांधी, दिव्येशजी शाह आदि परिवारों ने अमूल्य सेवाएँ दी, एतदर्थ उन सभी को सहृदय साधुवाद है।

इसी प्रवास के दरम्यान कलकत्ता, जयपुर, मुम्बई, जगदलपुर, मद्रास, बेंगलोर, मालेगाँव, टाटानगर, वाराणसी आदि के संघों एवं तत् स्थानवर्ती कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दुसाज, विमलचन्दजी महमवाल, महेन्द्रजी नाहटा, अजयजी बोथरा, पन्नालाल दुगड़, नवरतनमलजी श्रीमाल, मयूर भाई शाह, जीतेशमलजी, नवीनजी झाड़चूर, अश्विनभाई शाह, संजयजी मालू, धर्मचन्दजी बैद आदि ने मुझे अन्तप्रेरित करते हुए अपनी सेवाएँ देकर इस कार्य की सफलता का श्रेय प्राप्त किया है। अतएव सभी गुरु भक्तों की अनुमोदना करती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

इस श्रेष्ठतम शोध कार्य को पूर्णता देने और उसे प्रामाणिक सिद्ध करने में L.D. Institute अहमदाबाद श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञानमंदिर-कोबा, प्राच्य विद्यापीठ-शाजापुर, खरतरगच्छ संघ लायब्रेरी-जयपुर, पार्श्वनाथ विद्यापीठ- वाराणसी के पुस्तकालयों का अनन्य सहयोग प्राप्त हुआ, एतदर्थ कोबा संस्थान के केतन भाई, मनोज भाई, अरूणजी आदि एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ के ओमप्रकाश सिंह को बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभ भावनाएँ प्रेषित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य को जनग्राह्य बनाने में जिनकी पुण्य लक्ष्मी सहयोगी बनी है उन सभी श्रुत संवर्धक लाभार्थियों का मैं अनन्य हृदय से आभार अभिव्यक्त करती हूँ।

इस बृहद शोध खण्ड को कम्प्यूटराईज्ड करने एवं उसे जन उपयोगी बनाने हेतु मैं अंतर हृदय से आभारी हूँ मितभाषी श्री विमलचन्द्रजी मिश्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वाराणसी) की, जिन्होंने इस कार्य को अपना समझकर कुशलता पूर्वक संशोधन किया। उनकी कार्य निष्ठा का ही परिणाम है कि यह कार्य आज साफल्य के शिखर पर पहुँच पाया है।

इसी क्रम में ज्ञान रसिक, मृदुस्वभावी श्रीरंजनजी कोठारी, सुपुत्र रोहितजी कोठारी एवं पुत्रवधु ज्योतिजी कोठारी का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने जिम्मेदारी पूर्वक सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन एवं कंवर डिजाईनिंग में सजगता दिखाई तथा उसे लोक रंजनीय बनाने का प्रयास किया। शोध प्रबन्ध की समस्त कॉपियों के निर्माण में अपनी पुण्य लक्ष्मी का सदुपयोग कर श्रुत उन्नयन में निमित्तभूत बने हैं।

Last but not the least के रूप में उस स्थान का उल्लेख भी अवश्य करना चाहूँगी जो मेरे इस शोध यात्रा के प्रारंभ एवं समापन की प्रत्यक्ष स्थली बनी। सन् 1996 के कोलकाता चातुर्मास में जिस अध्ययन की नींव डाली गई उसकी बहुमंजिल इमारत सत्रह वर्ष बाद उसी नगर में आकर पूर्ण हुई। इस पूर्णाहुति का मुख्य श्रेय जाता है श्री जिनरंगसूरि पौशाल के ट्रस्टी श्री विमलचंदजी महमवाल, कान्तिलालजी मुकीम, कमलचंदजी धांधिया, मणिलालजी दुसाज आदि को जिन्होंने अध्ययन के लिए यथायोग्य स्थान एवं सुविधाएँ प्रदान की तथा संघ समाज के कार्यभार से मुक्त रखने का भी प्रयास किया।

इस शोध कार्य के अन्तर्गत जाने-अनजाने में किसी भी प्रकार की त्रुटि रह गई हो अथवा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सहयोगी बने हुए लोगों के प्रति कृतज्ञ भाव अभिव्यक्त न किया हो तो सहृदय मिच्छामि दुक्कडम् की प्रार्थी हूँ।

प्रतिबिम्ब इन्दू का देख जल में, आनंद पाता है बाल ज्यों।
आप्त वाणी मनन कर, आज प्रसन्नचित्त मैं हूँ।
सत्गुरु जनों के मार्ग का, यदि सत्प्ररूपण ना किया।
क्षमत्व हूँ मैं सुज्ञ जनों से, हो क्षमा मुझ गल्तियाँ।।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी–

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररुपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्कक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

•

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव 1-29

1. सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव 2. ग्रन्थि तन्त्रों पर मुद्रा के प्रभाव 3. चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा के प्रभाव 4. पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव 5. मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम।

अध्याय-2 : आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का प्रासंगिक विवेचन 30-127

1.1. ज्ञान मुद्रा 1.2. ज्ञान ध्यान मुद्रा 1.3. ज्ञान वैराग्य मुद्रा 1.4. अभय ज्ञान मुद्रा 1.5. तत्त्वज्ञान मुद्रा 1.6. बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा 1.7. पूर्णज्ञान मुद्रा 2. वायु मुद्रा 3. शून्य मुद्रा 4. पृथ्वी मुद्रा 5. सूर्य मुद्रा 6. वरुण मुद्रा 7. आकाश मुद्रा 8. ध्यान मुद्रा 9. समन्वय (सूकरी) मुद्रा 10. हंसी मुद्रा 11. मृगी मुद्रा 12. आदिति मुद्रा 13. जलोदर नाशक मुद्रा 14. शंख मुद्रा 15. सहज शंख मुद्रा 16. पंकज मुद्रा 17. लिंग मुद्रा 18. किडनी मूत्राशय मुद्रा 19. बंधक मुद्रा 20. पुस्तक मुद्रा 21. प्रज्वलिनी मुद्रा 22. हार्ट मुद्रा 23. अनुशासन मुद्रा 24. आशीर्वाद मुद्रा 25.1. सुरभि मुद्रा 25.2. जल सुरभि मुद्रा 25.3. पृथ्वी सुरभि मुद्रा 25.4. शून्य सुरभि मुद्रा 25.5. वायु सुरभि मुद्रा 26. प्राण मुद्रा 27. अपान मुद्रा 28. उदान मुद्रा 29. व्यान मुद्रा 30. समान मुद्रा 31. अपानवायु मुद्रा 32. वयन मुद्रा 33. कामजयी मुद्रा।

अध्याय-3 : चिकित्सा उपयोगी मुद्राओं का चार्ट 128-137

1. शारीरिक रोगोपचार की मुद्राएँ 2. मानसिक रोगोपचार की मुद्राएँ 3. आध्यात्मिक रोगोपचार की मुद्राएँ।

सहायक ग्रन्थ सूची 138

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के यादगार पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकश: बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुनः कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुनः कलकत्ता नगरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अतः उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अतः सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्रायः अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुनः साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अतः चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्त्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अतः न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अतः एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अतः उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुनः कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अतः दो माह तक अध्ययन की गति पर पुनः ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि-

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अतः वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुनः कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्रायः शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णतः निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अतः त्वरा गति से कार्य चला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक अनुमोदना

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रातःकालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रातःकालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्त: शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्त: शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यत: अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्‌गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणत: एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो निःसन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावतः मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंतःस्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्त:स्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2... आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे– पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता है अतः इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं–

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अतः दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे– भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह उर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि के रोगों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्षःस्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Botting आ जाना आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं–

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्ठम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं–

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, अनिश्चिय, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्रार चक्र

सहस्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं– नाड़ी तन्त्र एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का उर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10... आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं–

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अत: इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्गुणों का विकास होता है।

4. थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे– हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे निःसृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अतः इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुफ्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अतः जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंद्रूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

22... आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों, मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्रायः मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

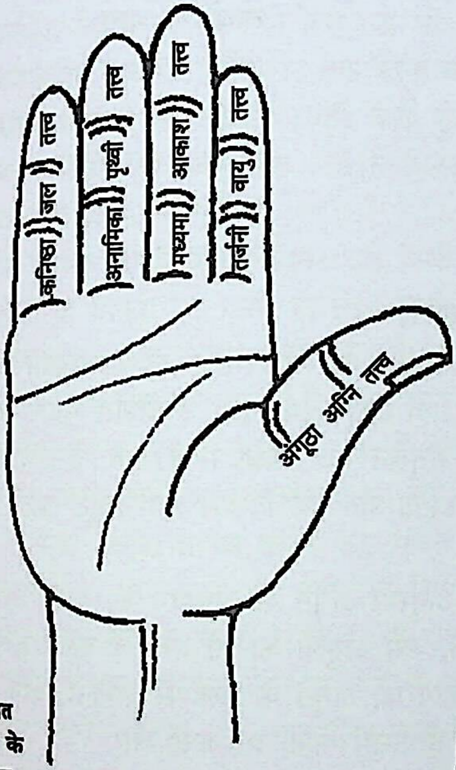

प्रचलित मान्यता के अनुसार

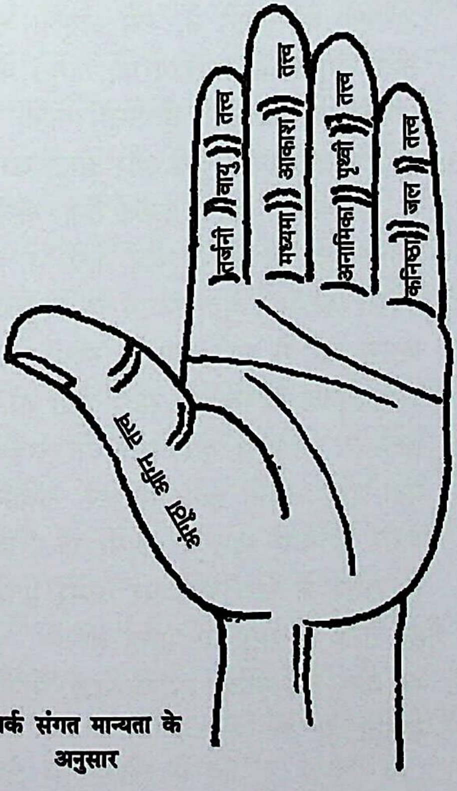

तर्क संगत मान्यता के अनुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगुलियों के नाम	**तत्त्वों के नाम**
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अतः इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।
रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशतः भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अतः विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्रायः हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्याय-2

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का प्रासंगिक विवेचन

मुद्रा विज्ञान प्राकृतिक नियमों पर आधारित शाश्वत सिद्धान्त है। प्रकृति, विज्ञान एवं अध्यात्म का अलौकिक समीकरण है। मुद्राएँ मानव शरीर रूपी महायन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ अर्थात Switch board हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्त्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलतापूर्वक लाए जा सकते हैं।

मुद्रा प्रयोग के लिए किसी उम्र, माहौल, शिक्षा या समय का बंधन नहीं है। Any time and Any where इनको धारण किया जा सकता है एवं इनसे लाभ होना सुनिश्चित है। इन्हीं सब सकारात्मक तथ्यों की वजह से आधुनिक चिकित्सा विशेषज्ञों ने मुद्राओं द्वारा रोग निदान को स्वीकार किया है। वर्तमान चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त कुछ विशेष मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार है–

1. ज्ञान मुद्रा

ज्ञान– प्रत्येक चेतना का स्वाभाविक गुण है, निजी धर्म है, अचिन्त्य शक्ति रूप है किन्तु सांसारिक प्राणियों की यह शक्ति पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों से आवृत्त है इसलिए उन्हें इस शक्ति गुण का अहसास नहीं होता, परिणामतः मिथ्या भ्रम में उलझता रहता है तथा अकारण कष्टों को आमन्त्रित करता रहता है। इस तरह की बाधाओं से पार होने का सशक्त उपाय है ज्ञान मुद्रा। सम्यक ज्ञान के द्वारा ही सजीव और निर्जीव का भेद स्पष्ट होता है। जिसमें ज्ञान है, समझ है वह सजीव कहलाता है। इसका प्रतिपक्षी पदार्थ निर्जीव कहलाता है।

यहाँ ज्ञान मुद्रा से तात्पर्य अन्तर्ज्ञान की अवस्था को उपलब्ध करना है। इस मुद्रा का अभ्यासी साधक आत्मज्ञान की अनुभूति करता हुआ परम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। यह मुद्रा आत्मा के ज्ञान गुण की प्राप्ति के लिए की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

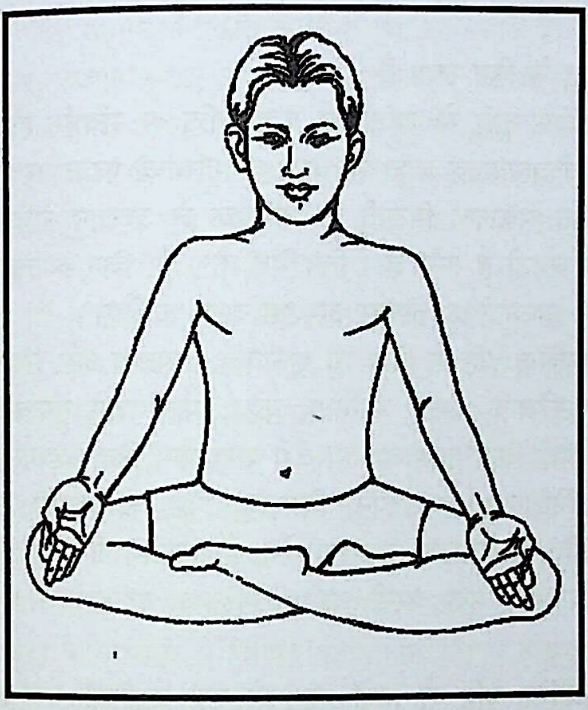

ज्ञान मुद्रा

विधि

सर्वप्रथम दोनों हाथ घुटनों पर रखें। फिर तर्जनी के अग्रभाग और अंगूठे के अग्रभाग को हल्के दबाव के साथ मिलाएँ तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को एक साथ सीधी रखना ज्ञान मुद्रा है।

निर्देश-1 इस मुद्रा के लिए पद्मासन श्रेष्ठ है वैसे वज्रासन, सुखासन आदि में भी यह मुद्रा की जा सकती है। विशेष स्थिति में कुर्सी-पट्टा पर भी बैठकर कर सकते हैं।

2. इस मुद्रा को सामान्यत: 48 मिनट करना चाहिए। यदि अनुकूलता हो तो अधिकतम समय भी की जा सकती है। शीघ्र परिणाम पाने के इच्छुक साधक को 48 मिनट का अभ्यास नियमित करना चाहिए। यदि किसी अन्य कार्य के लिए हाथ का उपयोग न हो रहा हो तो उस खाली टाईम में भी इस मुद्रा का अभ्यास किया जा सकता है।

3. इस मुद्रा को करते समय दोनों हाथों को अच्छी तरह शिथिल रखें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपरिणाम

इस मुद्रा के निम्न लाभ हैं–

- बौद्धिक दृष्टि से व्यक्ति की ग्राह्य शक्ति का संवर्धन होता है जिससे आवश्यक एवं ज्ञानवर्द्धक बहुत सी बातों को मस्तिष्क पटल पर संग्रहित करने में अप्रत्याशित सफलता मिलती है। मस्तिष्क के ज्ञानतंतु सक्रिय बनते हैं, स्मरण शक्ति बढ़ती है और ज्ञान विकसित होता है। जिन व्यक्तियों की स्मृति मन्द हो उन्हें ज्ञानमुद्रा का निरंतर अभ्यास करना चाहिए।

- मानसिक दृष्टि से चित्त की एकाग्रता, प्रसन्नता और निर्भीकता बढ़ती है। साथ ही उत्तेजना, प्रमाद, अनिद्रा, क्रोध, मान, जैसे तनाव दूर होते हैं। मस्तिष्क सम्बन्धी किसी तरह का रोग जैसे पागलपन, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता, घबराहट, अनिश्चितता, उन्मादपन, डिप्रेशन, फिट की बीमारी, उतावलापन, व्याकुलता और चंचलता का निवारण होता है। माइग्रेन जैसे दर्द के लिए ज्ञान मुद्रा के साथ प्राण मुद्रा करनी चाहिए। मस्तिष्क शक्तिशाली एवं ऊर्जायुक्त होता है।

- शारीरिक दृष्टि से हाथों की नसें एवं धमनियाँ मजबूत बनती है। स्नायुमंडल की क्षमता बढ़ती है। शरीर की पिच्युटरी और पिनियल ग्रंथियों के स्राव नियंत्रित रहते हैं। जिन्हें अधिक नींद आती हो उनकी नींद संतुलित होती है। संशोधन के अनुसार अविकसित बुधरेखा और शुक्र पर्वत का विकास होता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर मानव मस्तिष्क के रहस्यमय तत्त्व अभिव्यक्त होते हैं। जिससे हमारा मस्तिष्क स्थानीय आज्ञा चक्र अत्यधिक प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास और पराशक्तियों में वृद्धि होती है। इसके समुचित अभ्यास से व्यक्ति एक-दूसरे के मनोभावों को आसानी से जान सकता है तथा भूत-भविष्य की घटनाओं को अपने स्मृति पटल पर यथावत देख सकता है। इस मुद्रा के दीर्घ अभ्यास से ज्ञान-नेत्र (केवलज्ञान) प्रकट हो सकता है जिसे आज की भाषा में **सिक्स्थ सैन्स डेवलप** होना (छठवीं इन्द्रिय का विकास) कहते हैं। यह वस्तुतः मानव मस्तिष्क के अपूर्ण रहस्यों को व्यक्त करने की कुंजी है।

- ज्ञान मुद्रा के प्रतीकात्मक अर्थ के आधार पर कनिष्ठिका, अनामिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मध्यमा ये तीनों अंगुलियाँ प्रकृति के तीन गुणों की प्रतीक हैं। 1. तमस् – जड़ता, अन्धकार, अज्ञान आदि; 2. रजस् – सक्रियता, गतिशीलता, प्रसन्नता आदि; 3. सत्त्व – ज्ञान, शुद्धि, जागृति, आत्मानुभूति आदि। आत्म तत्त्व की उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए इन तीनों अवस्थाओं को एक के बाद एक बार करना पड़ता है। इस तरह मुद्रा प्रयोग द्वारा अज्ञान से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर प्रवृत्ति होती है।

• मुड़ी हुई तर्जनी अंगुली व्यक्तिगत जागृत चेतना का प्रतीक है। तदनुसार वैयक्तिक चेतना का विकास होता है। अंगूठा परमात्म शक्ति को नमन करने का प्रतीक है इससे साधक व्यापक शक्ति (परमात्म सत्ता) के निकट पहुँचता है। तर्जनी का अंगूठे से स्पर्श होना इंगित करता है कि भले ही आत्मा और परमात्मा तत्त्व पृथक्-पृथक् दिखाई देते हों, वस्तुतः जीवात्मा (व्यष्टि) एवं परमात्मा (समष्टि) रूप होने से एक और अभिन्न है। इस तरह यह मुद्रा आत्मसत्ता के चरमोत्कर्ष (परमात्मसत्ता) का स्पर्श करवाती है।

• इस मुद्रा के अभ्यास से विशिष्ट शक्ति केन्द्र जागृत होकर अध्याय-1 के अनुसार उनके अनेक सुप्रभाव होते हैं–

चक्र– अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

• एक्युप्रेशर चिकित्सकों ने अंगुलियों के अग्रभाग को मस्तिष्क का स्थान माना है। उनके मतानुसार उस स्थान पर दबाव पड़ने से सिर दर्द दूर होता है और मस्तिष्क क्षमता विकसित होती है। अंगुष्ठ के अग्रभाग (ऊपरी सिरे के निकटवर्ती स्थान) को पिट्यूटरी एवं पिनियल केन्द्र कहा गया है। ये ग्रन्थियाँ शारीरिक स्वस्थता और वैयक्तिक विकास में अहम् भूमिका निभाती हैं। इस भाग पर दबाव पड़ने से मैत्री, करुणा, ऋजुता, दया, स्थैर्यता आदि निर्मल भावों का उद्भव होता है। आत्म ध्यान या समाधि में तद्चिद्रूप होने के लिए इस मुद्रा को आवश्यक अंग के रूप में स्वीकारा गया है। गीता में वर्णित एक श्लोक से सिद्ध होता है कि महाभारत युद्ध के समय श्री कृष्ण ने कर्मयोगी अर्जुन को ब्रह्म विद्या गीता का उपदेश ज्ञान मुद्रा में दिया था। वह श्लोक निम्न है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रपन्नपारिजाताय, तोत्रवेत्रै पाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय, गीतामृत दुहे नमः।।

1.2. ज्ञान ध्यान मुद्रा

यह ज्ञान मुद्रा का दूसरा प्रकार है। इसमें ज्ञान मुद्रा पूर्वक ध्यान मुद्रा में स्थिर होने का प्रयोग किया जाता है। इस मुद्रा का उद्देश्य ध्यान साधना के अंतिम सोपान को स्पर्श करना है।

विधि

सर्वप्रथम पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर दोनों हाथों से पूर्ववत ज्ञान मुद्रा करें। फिर बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली रखकर, दोनों हाथों को नाभि के समीप रखने पर ज्ञान-ध्यान मुद्रा बनती है।

निर्देश– इस मुद्रा का प्रयोग पद्मासन अथवा सुखासन में 48 मिनट तक किया जाना चाहिए।

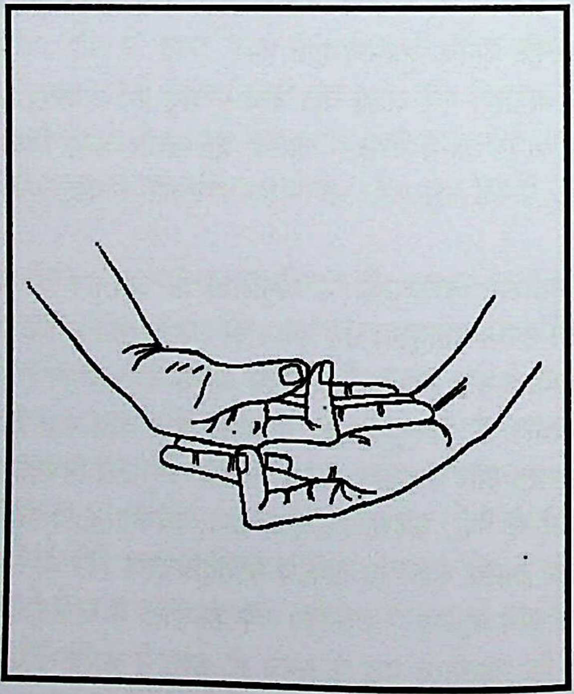

ज्ञान ध्यान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपरिणाम

इस मुद्रा के द्वारा ज्ञान मुद्रा के सभी परिणाम हासिल होते हैं। इसके अतिरिक्त इस मुद्रा का निम्न चक्रों आदि पर भी अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है जिससे अध्याय-1 के अनुसार अनेक लाभ होते हैं–

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं प्रजनन ग्रंथि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र।

- शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा, दमा, एलर्जी, खून की कमी, खसरा, मधुमेह, हर्निया, दाद-खाज, बुखार, नपुंसकता, अल्सर, पाचन समस्या, हृदय, छाती, फेफड़ें, प्रजनन अंग, वायु, पाचन आदि के विकारों का शमन करती है।
- मानसिक स्तर पर इस मुद्रा के द्वारा निष्क्रियता, नशे की लत, असंतुष्टि, निर्ममता आदि भावनात्मक समस्याओं का निवारण होता है। ध्यान के क्षेत्र में विशेष प्रगति होती है और ज्ञान चेतना ध्यान के अभिमुख होकर आत्म सुख का आस्वादन करती है।

1.3 ज्ञान वैराग्य मुद्रा

यह ज्ञान मुद्रा का तीसरा प्रकार है। ज्ञान का अग्रिम पगथिया वैराग्य है इसलिए यह मुद्रा ज्ञान मुद्रा के साथ की जाती है। इस मुद्रा के माध्यम से वैराग्य भाव को जागृत एवं परिपुष्ट करने का प्रयास किया जाता है। मोक्षार्थियों के लिए यह मुद्रा अत्यन्त उपयोगी है। सम्यक ज्ञान पूर्वक उत्पन्न होने वाला वैराग्य ही वीतराग अवस्था का जनक होता है। इस अपेक्षा से यह मुद्रा सम्यक ज्ञान से सम्यक दर्शन (वैराग्य भाव) और सम्यक दर्शन से सम्यक चारित्र (वीतराग भाव) की भूमिका पर अवस्थित होने के लिए की जाती है।

विधि

सर्वप्रथम पद्मासन, सिद्धासन अथवा किसी भी अनुकूल आसन में बैठकर दोनों हाथों से पूर्ववत ज्ञान मुद्रा बनाएं। फिर ज्ञान मुद्रा युक्त दाहिने हाथ को हृदय (आनन्द केन्द्र-अनाहत चक्र) के पास रखें तथा ज्ञानमुद्रा युक्त बाएं हाथ को बाएं घुटने पर रखने से ज्ञान-वैराग्य मुद्रा बनती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

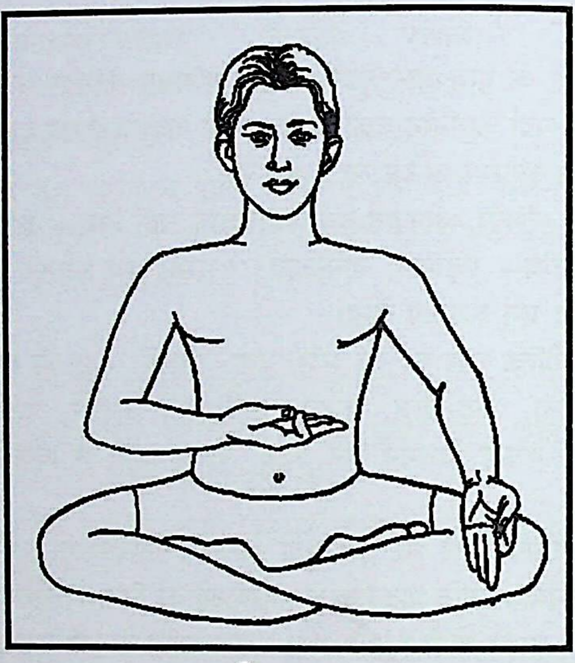

ज्ञान वैराग्य मुद्रा

निर्देश– यह मुद्रा ऊपर निर्दिष्ट किसी भी आसन में 48 मिनट तक की जानी चाहिए।

सुपरिणाम

इस मुद्रा के द्वारा ज्ञान मुद्रा के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। इसके सिवाय मानसिक दृष्टि से चेतना केन्द्र स्थिर बनता है, मानसिक संताप दूर होते हैं तथा विशिष्ट प्रकार के आनन्द का उद्भव होता है।

- अध्यात्म स्तर पर उस व्यक्ति में वैराग्य की भावना विकसित होती है। इस मुद्रा प्रभाव से व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहकर भी मोह से विरक्त और निष्पाप जीवन जी सकता है।
- वैराग्य मुद्रा की मुख्य विशेषता यह है कि इसके नियमित अभ्यास से साधक बिना किसी मंत्रोच्चारण के परम ज्ञान (वीतराग भाव) को प्राप्त होता है तथा निष्काम भक्ति जन्म लेती है। यह मुद्रा बिजली के स्विंच की भाँति है जिसका बटन ऑन करने से (अंगुली के निर्धारित स्थान को दबाने से) मस्तिष्क ज्ञान की रोशनी से जगमगा उठता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• इस मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्रों का शोधन होता है-

चक्र- आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**- आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**- पीयूष एवं पिनियल ग्रंथि **केन्द्र**- दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**- मस्तिष्क, आँख एवं स्नायुतंत्र।

• शारीरिक स्तर पर यह मुद्रा ब्रेन ट्युमर, पार्किंसंस रोग, मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याएँ, मिरगी, अनिद्रा, पीयूष ग्रंथि की समस्या आदि में लाभ पहुँचाती है।

• भावनात्मक स्तर पर इस मुद्रा से उन्मत्तता, निराशा, पागलपन, अनुत्साह, स्मृति आदि समस्याओं का निवारण होता है।

1.4 अभय ज्ञान मुद्रा

यह ज्ञान मुद्रा का ही एक विशिष्ट प्रकार है। जैसा कि इस मुद्रा नाम से परिभाषित होता है कि आत्मा न जन्मती है न मरती है वह तो अजर-अमर-अविनाशी-अखंड द्रव्य है। शरीर परिवर्तनशील और मरणधर्मा है। आत्मा तो

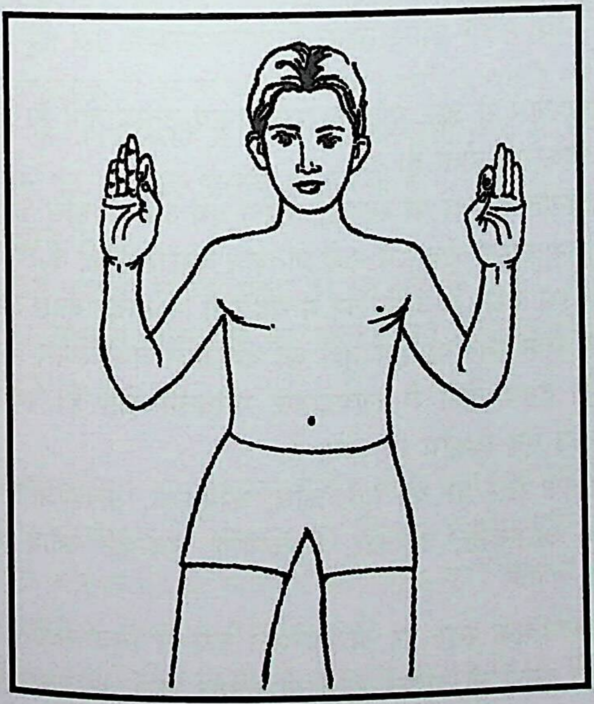

अभय ज्ञान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वबद्ध कर्मों से आबद्ध एवं नये-नये कर्म का सिंचन करने के कारण निर्धारित समय के लिए पृथक्-पृथक् शरीर धारण करती है। टूटना-बिखरना-बिछुड़ना यह सब शरीर के आश्रित हैं आत्मा तो अनन्त शक्तिशाली है उसे विघटित करने की ताकत किसी में नहीं है इसलिए व्यक्ति को किसी भी प्रतिकूल स्थिति अथवा मृत्यु के निकट आने पर भयभीत नहीं होना चाहिए। निर्भीकता, चेतना की अन्तरंग शक्ति है। इस आत्म शक्ति का अहसास करने के लिए प्रस्तुत मुद्रा करते हैं। यह मुद्रा कुर्बानी, निडरता और साहस का प्रतीक है तथा यौगिक परम्परा के वाहकों द्वारा धारण की जाती है।

विधि

दोनों हाथों से ज्ञानमुद्रा बनायें। फिर दोनों हाथों को दोनों कंधों के आस-पास इस तरह रखें कि हथेली का हिस्सा कंधों के समभाग में रहें, इस तरह अभय ज्ञान मुद्रा बनती है।

निर्देश– यह मुद्रा खड़े या बैठे किसी भी उचित स्थिति में 15 से 20 मिनट की जानी चाहिए।

सुपरिणाम

इस मुद्राभ्यास से ज्ञान मुद्रा के सभी प्रभाव उत्पन्न होते हैं। इसी के साथ निर्भय गुण विकसित होता है।

- भावनात्मक स्तर पर साहस, धैर्यता एवं आत्मविश्वास का संचार होता है। आज के तनावग्रस्त जीवन में नब्बे प्रतिशत बीमारियों का कारण भावनात्मक असंतुलन है। इस प्रकार के असंतुलन में यह मुद्रा नि:सन्देह बहुत लाभदायक है।
- शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा का दीर्घकाल तक प्रयोग करते रहने से मस्तिष्क और हृदय दोनों में लाभदायक परिवर्तन होते हैं। स्थायी रूप से मानसिक संताप एवं विक्षोभ दूर होता है।
- भौतिक स्तर पर यह मुद्रा क्रोध, कामुकता, अनेकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, असन्तुष्टि, अहंकार, निष्क्रियता, घबराहट आदि का निवारण करती है।
- आध्यात्मिक स्तर पर अप्रत्याशित रूप से निज स्वरूप की प्रतीति होने लगती है। इससे भी बढ़कर अभ्यासी साधक किसी भी प्रकार की मुसीबत अथवा भय से आक्रान्त नहीं होता। प्राचीन युग में वनों में रहने वाले ऋषि-मुनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जंगली जानवरों या अन्य समस्याओं से भयमुक्त होने के लिए इसी मुद्रा का उपयोग करते थे।

- इस मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्र जागृत एवं प्रभावित होते हैं–

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ी तंत्र, आंते, नाक, कान, गला, मुख, स्वरयंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

- जैन सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को पहले ज्ञान होता है, फिर वैराग्य और उसके बाद वह साधक अभय की स्थिति से गुजरता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए क्रमशः ज्ञान, वैराग्य और अभय मुद्रा का वर्णन किया है। भगवान महावीर ने अभय मुद्रा में चण्डकौशिक सर्प को भयमुक्त ही नहीं पापमुक्त भी कर दिया था। ईसा शूली पर चढ़ते समय अभय मुद्रा में थें। उन्होंने इस मुद्रा के द्वारा सर्व प्राणियों को पाप रहित एवं सत्य के प्रति निर्भीक रहने का संदेश दिया। जो व्यक्ति इस मुद्रा का अभ्यास करते हैं उनके स्नायु मंडल सम्बन्धी अनगिनत बीमारियाँ स्वाभाविक ही दूर हो जाती हैं। इस आणविक युग में यह मुद्रा अत्यन्त उपयोगी है। जो मानव किसी भी प्रकार के भय आदि से दुःखी है उन लोगों की चिकित्सा इस मुद्रा के द्वारा सम्भव हो सकती है।

1.5 तत्त्वज्ञान मुद्रा

यह ज्ञान मुद्रा का पांचवाँ प्रकार है। इस मुद्रा के नाम से ज्ञात होता है कि इस मुद्रा का अभ्यास आत्मतत्त्व की पहचान एवं प्रत्यक्षानुभूति के उद्देश्य से किया जाता है।

विधि

सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बैठ जायें। फिर बायें हाथ की पृथ्वी मुद्रा (अंगूठा और अनामिका के अग्रभाग को मिलाकर) और दाहिने हाथ की ज्ञान मुद्रा (अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को संयुक्त कर) बनाकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखने से तत्त्वज्ञान मुद्रा बनती है।

निर्देश– पूर्व निर्दिष्ट किसी भी अनुकूल आसन में 15 से 20 मिनट यह मुद्रा करनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

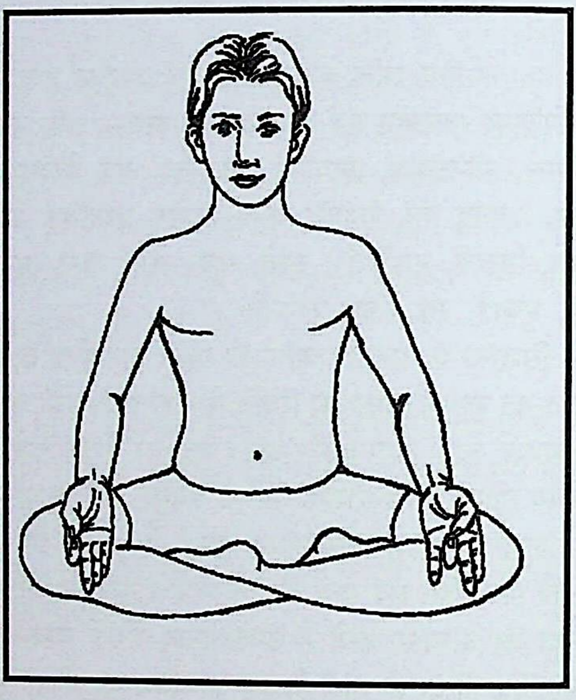

तत्त्वज्ञान मुद्रा

सुपरिणाम

इस मुद्रा के सहयोग से ज्ञान मुद्रा के अधिकांश लाभ हासिल होते हैं। इसी के साथ आत्मशक्ति के विज्ञानमय कोष खुलते हैं और उससे सूक्ष्म ज्ञान की प्रतीति होने लगती है।

इस मुद्राभ्यास से निम्न शक्ति केन्द्रों का परिशोधन होता है और उससे दुःसाध्य रोगों का भी उपचार हो जाता है–

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पैराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थ **केन्द्र**– विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुँह, स्वरयंत्र, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1.6 बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा

भारतीय कोष का रहस्यपूर्ण शब्द है बोधिसत्त्व। बोधि का अर्थ है– अन्तर्ज्ञान, परमज्ञान, अव्यक्त ज्ञान। सत्त्व का अर्थ है निर्भयता, निडरता, वीरता। प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार इस मुद्रा का अभ्यास अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति एवं निर्भय दशा की उपलब्धि निमित्त किया जाता है।

विधि

बोधिसत्त्व मुद्रा बनाने के लिए पहले दाहिने हाथ से ज्ञान मुद्रा करके हृदय के पास (समभाग) रखें। फिर बायें हाथ से ज्ञान मुद्रा बनाकर दाहिने हाथ के ऊपर इस तरह रखें कि दोनों हाथों के अंगूठें और तर्जनी एक दूसरे से सम्पृक्त हों इस तरह बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा होती है।

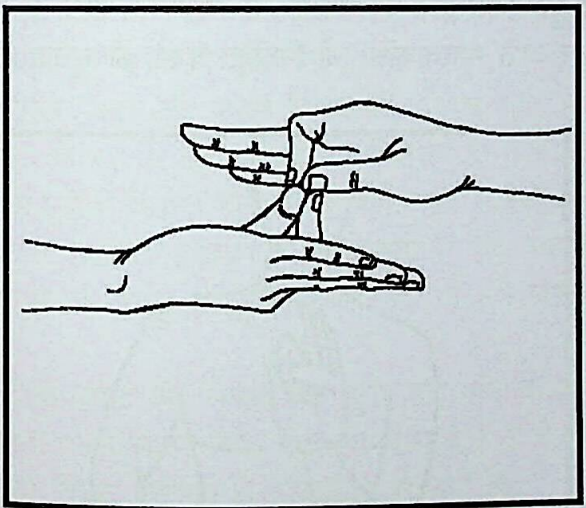

बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा

निर्देश– सुखासन या वज्रासन में स्थित होकर इस मुद्रा का 15 मिनट नियमित रूप से प्रयोग करना चाहिए।

सुपरिणाम

ज्ञान मुद्रा में बताये गये सभी तरह के अच्छे परिणाम इस मुद्रा के प्रयोग से भी हासिल होते हैं। इसके अतिरिक्त ध्यान साधना में अपेक्षाधिक प्रगति होती है। इसी के साथ अभ्यास के अनुरूप वैचारिक निर्मलता, बौद्धिक क्षमता एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम होता है। अनुभवियों के मतानुसार ज्योति केन्द्र (ललाट के मध्यभाग) पर श्वेत प्रकाश बिखरता दिखाई देता है।

इस मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्र भी सक्रिय होते हैं–

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** जल एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें आदि।

1.7. पूर्णज्ञान मुद्रा

ज्ञान मुद्रा का यह सर्वोत्तम प्रकार साधकों के लिए निःसन्देह अनुकरणीय है। इस मुद्राभ्यास का प्रयोजन इसके अन्वर्थक नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि साधक यह मुद्रा केवलज्ञान की संप्राप्ति के उद्देश्य से करता है। यह मुद्रा नशा नियंत्रण और अति महत्त्वाकांक्षा को नियंत्रित करने की सूचक है।

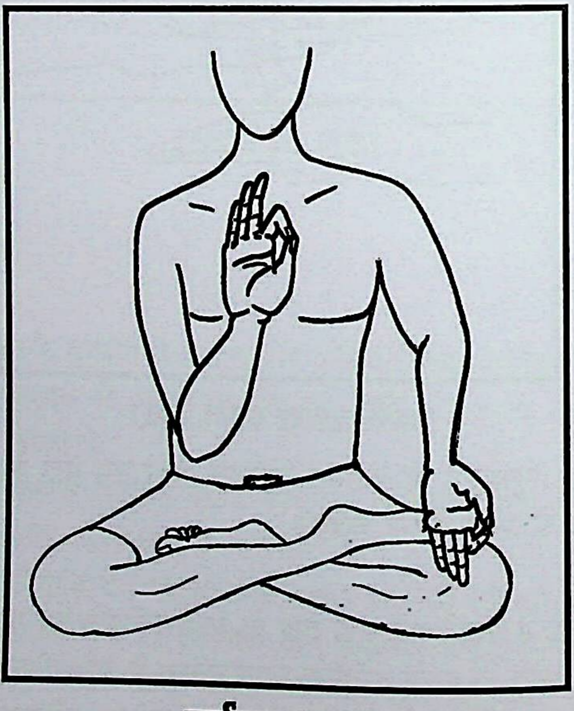

पूर्णज्ञान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि

सबसे पहले किसी भी सरल आसन अथवा पद्मासन में बैठें। फिर दाहिने हाथ से ज्ञान मुद्रा बनाकर उसे हृदय के दायीं ओर रखें तथा बायें हाथ से ज्ञान मुद्रा बनाकर एवं हथेली को आकाश की तरफ करते हुए उसे बायें घुटने पर रखा जाए तब पूर्णज्ञान मुद्रा बनती है।

निर्देश– पूर्वोक्त किसी भी अनुकूल आसन में 15 से 30 मिनट नियमित रूप से अभ्यास करना चाहिए।

सुपरिणाम

- सामान्यतया यह मुद्रा पूर्णज्ञान की स्थिति तक पहुँचाती है।
- मानसिक जगत में इससे काम वासना से सम्बन्धित कुविचारों पर नियंत्रण होता है तथा प्रेम एवं करुणा का संचार होता है। इस मुद्रा के निरंतर अभ्यास से चिंता एवं तनाव से मुक्ति मिलती है।
- शारीरिक जगत की अपेक्षा विचार करें तो यह मुद्रा आम जीवन में किसी भी प्रकार के नशे से छुटकारा दिलाने में सक्षम है। नशाग्रस्त व्यक्ति को किंचित देर इस मुद्रा में बिठाया जाये तो वह शनैः शनैः नशीली प्रवृत्ति कम कर देगा और अन्ततः नशे का परित्याग भी कर सकता है। यदि व्यसनी नशा त्याग की इच्छा रखता हो किन्तु मनःशक्ति दुर्बल हो, तो उसे चमत्कारिक लाभ मिलता है।
- बौद्धिक जगत की अपेक्षा यह मुद्रा मंद गति बालकों को नित्य करवानी चाहिए। इससे स्मरण शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि होती है तथा किसी भी प्रकार के दूषित विचार मनोभाव से निष्कासित हो जाते हैं।
- पर्यावरण जगत भी पर्याप्त सीमा तक प्रभावित होता है। जिससे आस-पास के वातावरण में प्रेम, सौहार्द और शांति प्रसरित होती है।
- आध्यात्मिक सन्दर्भ में इस मुद्राभ्यास से शरीर में विचित्र प्रकार की विद्युतीय तरंगों का आभास होता है जिसके द्वारा व्यक्ति को आत्म तत्त्व का ज्ञान एवं आत्मसुख की अनुभूति होती है, जिसे व्यक्त करना निःसन्देह एक दुष्कर कार्य है। भारतीय इतिहास साक्षी है कि इस मुद्रा के द्वारा अनेकों महापुरुष साधना की चरम स्थिति को प्राप्त हुए हैं।
- एक संशोधक के अनुसार इस मुद्राभ्यासी साधक का आभामण्डल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकर्षक एवं विस्तृत होता जाता है। इससे आज्ञा चक्र विकसित होने से साधक को दिव्य दृष्टि की भी प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह मुद्रा साधक को योग की चरम स्थिति उपलब्ध करवाने में सहायक सिद्ध होती है।

- योगाभ्यासियों का अभिमत है कि यह भगवान रामचन्द्र की सर्वप्रिय मुद्रा थी। भगवान बुद्ध को इसी मुद्रा में पूर्णज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

इस मुद्रा के द्वारा सप्त चक्रों आदि की जागृत अवस्था के सभी परिणाम प्राप्त होते हैं तथा शरीर के प्रभावित अंगों का निदान होता है–

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली आदि।

2. वायु मुद्रा

जन साधारण का यह अनुभव है कि व्यक्ति भोजन के बिना कुछ महीने जीवित रह सकता है, पानी के बिना भी कुछ दिन स्वस्थ रह सकता है किन्तु वायु के बिना कुछ मिनट जिंदा रहना मुश्किल है इससे वायु का महत्त्व मापा जा

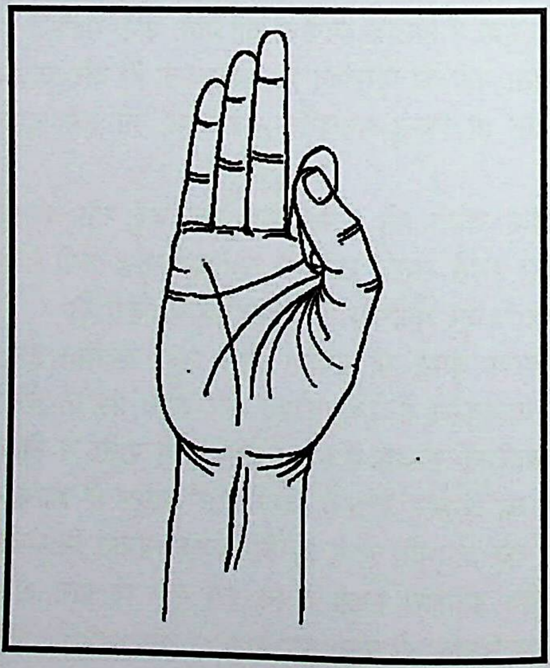

वायु मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है। आयुर्वेदज्ञों का मानना है कि वात, पित्त और कफ के संतुलन से शरीर, मन एवं चेतना स्वस्थ रहती है तथा इनके असंतुलन से शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। मूलत: जब वायु शरीर में सम रहती है तब शरीर स्वस्थ रहता है। वायु अस्थिरता-चंचलता का प्रतीक है। वायु के विषम होने पर उसका प्रभाव मनोजगत पर भी पड़ता है। अत: स्पष्ट है कि वातजन्य रोगों की उपशान्ति एवं मन:स्थैर्य के लिए वायु मुद्रा का प्रयोग किया जाता है।

विधि

इस मुद्रा के लिए सर्वश्रेष्ठ वज्रासन अथवा शरीर के अनुकूल आसन में स्थिर बनें। फिर तर्जनी के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगायें, फिर अंगूठे से उस तर्जनी पर हल्का दबाव रखते हुए शेष अंगुलियों को सीधा रखने पर वायु मुद्रा बनती है।[1]

निर्देश– 1. वज्रासन में इस मुद्रा का अभ्यास 30 मिनट किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो दिन में 2 या 3 बार भी 15-15 मिनट कर सकते हैं।

2. किसी भी वायु रोग का आक्रमण होने पर 24 घंटे के भीतर इस मुद्रा के तत्काल प्रयोग से लगभग 45 मिनट में रोग शान्त होने लगता है।

3. यदि इस मुद्रा प्रयोग के उपरान्त रोग शमन में विलम्ब हो रहा है तो प्राण मुद्रा का प्रयोग भी कर लेना चाहिए।

4. कान और पेट का दर्द वायु मुद्रा से ठीक नहीं होता, क्योंकि वह वायुजनित दर्द नहीं होता। अत: पेट दर्द के लिए अपान मुद्रा एवं उत्तानपाद आसन करना चाहिए तथा कान दर्द मिटाने हेतु शून्य मुद्रा करनी चाहिए।

सुपरिणाम

स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से यह मुद्रा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके माध्यम से वायुजनित रोगों को दूर करने के आशातीत परिणाम देखे जा सकते हैं।

- अनुभवियों के मतानुसार यह मुद्रा वायु से उत्पन्न अनेक रोगों में एक प्रभावशाली औषधि की तरह कार्य करती है। आयुर्वेदानुसार 51 प्रकार के वायु रोगों से उत्पन्न उपद्रवों को इस मुद्रा प्रयोग से शान्त किया जा सकता है।
- इससे गठिया का दर्द, लकवा (पेरेलिसीस), वायु कम्पन (पार्किन्सन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोग), सर्वाईकल स्पोंडिलाइसीस, घुटनों के दर्द, वायुशूल आदि अनेक रोगों का निवारण होता है। कुपित वायु प्रशान्त होती है।

- गर्दन में बायीं ओर वातजन्य पीड़ा हो तो दाहिने हाथ से, दाहिनी ओर तकलीफ हों तो बायें हाथ से तथा पूरी गर्दन में दर्द हो तो दोनों हाथ से वायु मुद्रा करने पर राहत मिलती है।
- भोजन करने के पश्चात बेचैनी या गैस की तकलीफ हो तब तुरन्त वज्रासन में बैठकर यह मुद्रा करने से आराम मिलता है।
- वायु तत्त्व का असंतुलन हृदय रोग को भी जन्म देता है, कई बार प्राणघातक कष्ट भी आ जाते हैं इसलिए प्रतिदिन थोड़ी देर ही सही इस मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।
- ऋतु परिवर्तन के समय तो इस मुद्रा को अवश्य साधना चाहिए ताकि प्रकृति परिवर्तन से वायु तत्त्व असंतुलित न हो।
- इस मुद्रा का सबसे अच्छा गुण यह है कि इसे अन्य उपचारों के साथ भी किया जा सकता है।
- अन्य पहलुओं से विमर्श किया जाए तो इस प्रयोग से चंचल वृत्तियाँ शान्त एवं स्थिर होती है। तदनुसार प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है।
- इस मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्रों के सक्रिय अवस्था के सभी सुफल प्राप्त होते हैं–

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे, हृदय, श्वास, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र आदि।

- एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञों के अनुसार तर्जनी अंगुली में मेरुदण्ड के विशेष बिन्दु हैं। उन बिन्दुओं पर दबाव पड़ने से मेरूदण्ड सम्बन्धी दोष दूर होते हैं और मेरूदण्ड पुष्ट होता है। अंगूठे के मूल में (जहाँ तर्जनी अंगुली का अग्रभाग स्थित है वहाँ) गले के विशिष्ट अवयव हैं उन पर दबाव होने से शरीर संतुलित रहता है तथा कार्यशीलता जैसे गुण विकसित होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. शून्य मुद्रा

शून्य शब्द भावार्थक है। यह अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है। यहाँ रिक्तता, पूर्णता, शान्ति, समृद्धि आदि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। किन्हीं ने शून्य शब्द को आकाश का पर्यायवाची कहा है इसीलिए यह मुद्रा मतान्तर से प्राप्त होती है। कहीं आकाश मुद्रा और शून्य मुद्रा को अलग-अलग परिभाषित किया गया है तो कहीं आकाश मुद्रा को शून्य मुद्रा और शून्य मुद्रा को आकाश मुद्रा कहा गया है। यहाँ शून्य मुद्रा को वर्णित किया जा रहा है।

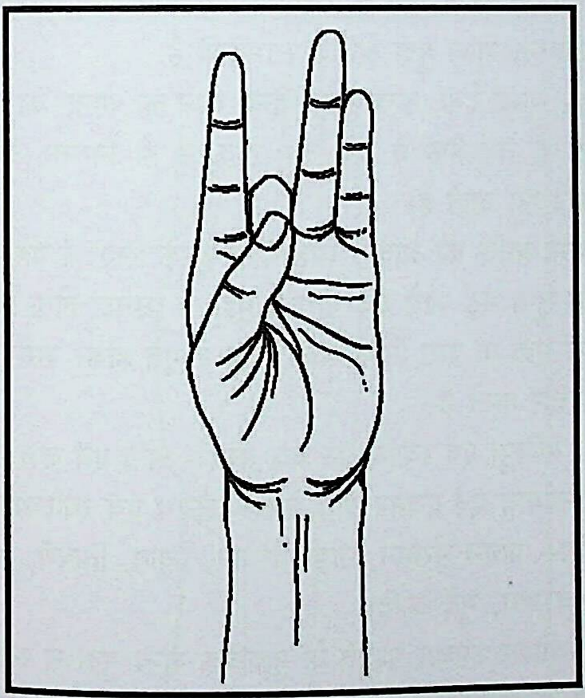

शून्य मुद्रा

विधि

इस मुद्रा की त्वरित सफलता के लिए वज्रासन में बैठें। फिर हथेली को सामने की ओर करते हुए मध्यमा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल भाग पर लगायें। तत्पश्चात उसके दूसरे पोर के ऊपर अंगूठे को हल्का सा दबाव देते हुए रखें तथा शेष अंगुलियों को सीधी रखते हुए शून्य मुद्रा बनती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– निर्धारित आसन में यह मुद्रा 15-15 मिनट दो-तीन बार की जा सकती है।

सुपरिणाम

यह ज्ञातव्य है कि आकाश तत्त्व का सम्बन्ध स्वर नाद से है इस तत्त्व के असंतुलित होने पर कान सम्बन्धी रोगों की अभिवृद्धि होती है यदि कान के किसी भी दर्द से छुटकारा पाना हो तो यह खास मुद्रा है।

- यह मुद्रा हृदय और श्रवण शक्ति के अभिवर्धन की सूचक है।
- यद्यपि आकाश मुद्रा के प्रयोग से भी कर्ण सम्बन्धी रोगों को राहत मिलती है उपरान्त शून्य मुद्रा अधिक लाभदायी है।
- कम सुनाई देना, ऊंचा सुनाई देना, कान का बहना, कान में दर्द होना आदि किसी भी तकलीफ में जब तक ठीक न हो निरन्तर करते रहने से आशातीत परिणाम आते हैं।
- किसी व्यक्ति की आवाज स्पष्ट न हो उसके लिए भी यह मुद्रा उपयोगी है। कोई अंग सूना पड़ जाये तब भी इस मुद्रा से फायदा होता है।
- इस मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्र जागृत होकर शरीर के प्रभावित अंगों का उपचार करते हैं–

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रंथि **केन्द्र–** तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, गुर्दे आदि।

- एक्युप्रेशर उपचार पद्धति के मुताबिक शून्य मुद्रा से सर्दी रोग, गले के रोग, गैस-अजीर्ण रोग में राहत मिलती है।

यह यौगिक परम्परा के अनुयायियों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली महत्त्वपूर्ण मुद्रा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. पृथ्वी मुद्रा

प्रत्येक आत्माओं के शरीर निर्माण में एक हिस्सा पृथ्वी तत्त्व का होता है। व्यावहारिक तौर पर पृथ्वी आधारभूत तत्त्व है। पृथ्वी से जीवन का विकास होता है। पृथ्वी को माता की उपमा दी गई है जैसे माता सहनशील होती है वैसे पृथ्वी में भी सहने की क्षमता है। जैनागमों में मुनि को पृथ्वी के समान सहिष्णु बनने की प्रेरणा दी गई है– 'पुढवी समे मुणी हवेज्जा।' अर्थात मुनि पृथ्वी के समान बने। पृथ्वी हर परिस्थिति में तटस्थ, हर व्यक्ति के लिए साम्य भाव रखती है।

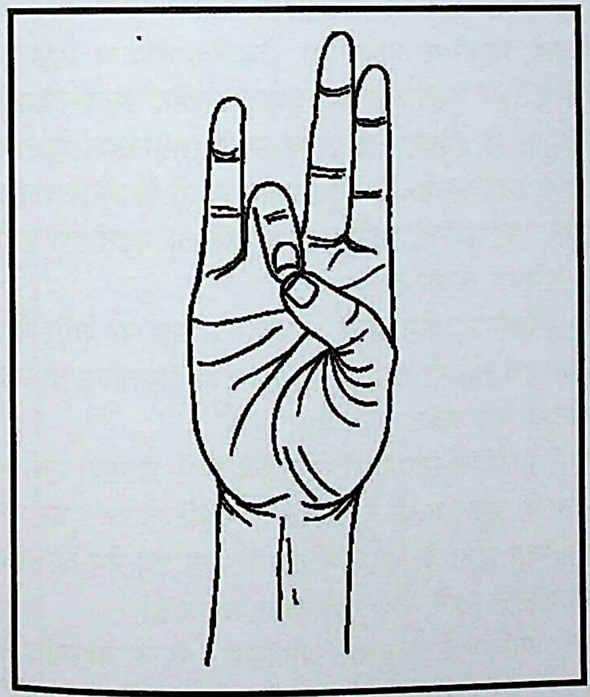

पृथ्वी मुद्रा

पृथ्वी शक्तिशाली एवं धृतिसम्पन्न भी मानी गई है। हमारा जीवन भी इन सद्गुणों से समन्वित हो सकता है बशर्ते पृथ्वी तत्त्व असंतुलित न हो। पृथ्वी मुद्रा का अभ्यास सहनशीलता, धैर्यता, शक्ति संचय, समन्वय दृष्टि जैसे गुणों को आत्मसात करने के उद्देश्य से किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि

इस मुद्रा की सार्थकता के लिए सबसे उत्तम वज्रासन में बैठें। फिर अनामिका अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधी रखना पृथ्वी मुद्रा है।[3]

निर्देश– पृथ्वी मुद्रा का प्रयोग वज्रासन में शीघ्र फलदायी बतलाया गया है। विशेष स्थिति में सुखासन एवं अन्य आसनों में भी इसका प्रयोग 24 मिनट से 48 मिनट तक किया जा सकता है।

सुपरिणाम

शरीर में पृथ्वी तत्त्व के असंतुलित अथवा पृथ्वी तत्त्व की कमी से शारीरिक दुर्बलता, मानसिक अस्वस्थता, वैचारिक शैथिल्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं उस स्थिति में पृथ्वी मुद्रा का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है।

- इस मुद्रा से दैहिक स्तर पर शरीर में सभी प्रकार के तत्त्वों की वृद्धि होती है। शरीर में सभी तत्त्वों का संतुलन बना रहता है। शरीर बलवान और पुष्ट बनता है। शरीर की कान्ति, शक्ति एवं तेजस्विता बढ़ती है। शरीर एवं मन हल्कापन का अनुभव करता है।
- इसका निरंतर प्रयोग करने से मानसिक स्तर पर शरीर में एक विशिष्ट उल्लास, स्फूर्ति एवं ताजगी का अनुभव होता है। आन्तरिक प्रसन्नता बढ़ती है। विचारों में औदार्य गुण प्रकट होता है।
- इसकी नियमित साधना से तामसिक गुणों का नाश एवं सात्त्विक गुणों का उद्भव होता है। सूक्ष्म तत्त्वों में परिवर्तन, नई दिशा का सूचन तथा अध्यात्म प्रेरणा से लाभान्वित होता है। हृदय में करुणा,दया एवं प्रेम का संचार होता है। व्यक्ति में सहनशीलता और धैर्य गुण बढ़ता जाता है।
- हस्त ज्योतिष के अनुसार अनामिका अंगुली बृहस्पति के स्थान के रूप में मानी गयी है। इस मुद्रा से बृहस्पति ग्रह तुष्टमान होकर बौद्धिक क्षमता और स्मरण शक्ति को विकसित करता है।
- धार्मिक क्रियाओं एवं शक्तिसंचय की दृष्टि से अनामिका अंगुली के अग्रभाग पर प्रेशर पड़ने से विद्युत शक्ति संग्रहित होने लगती है तथा इस अंगुली से तिलक करके शक्ति को प्रवाहित भी किया जाता है। इस तरह अनामिका अंगुली अंगुष्ठ की तरह शक्तिशाली है। यह मुद्रा विटामिन्स की कमी को दूर करने की तथा उदार दृष्टिकोण और धैर्य अभिवृद्धि की सूचक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

- इस मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्र सक्रिय होते हैं–

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व**– पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र**– शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मेरूदण्ड, गुर्दे, पाँव, पाचन संस्थान, नाड़ी संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें।

- एक्युप्रेशर के अनुसार अनामिका अंगुली में भी साइनस उपचार के केन्द्र बिन्दु हैं इससे सर्दी जनित रोगों का निवारण होता है। शरीर स्वस्थ एवं पुष्ट बनता है। प्राण ऊर्जा विकसित होती है। शरीर में तेल एवं ठोस तत्त्व बढ़ाने के लिए पृथ्वी मुद्रा सर्वश्रेष्ठ है।

5. सूर्य मुद्रा

सूर्य ग्रहों का अधिपति, तेज गुण का धनी एवं ऊर्जा का स्रोत माना गया है। समग्र ब्रह्माण्ड ऊर्जामय है, हर व्यक्ति के लिए ऊर्जा का होना परमावश्यक है। कोई भी प्राणी ऊर्जा के बिना सक्रिय नहीं रह सकता। यदि शरीर में ऊर्जा

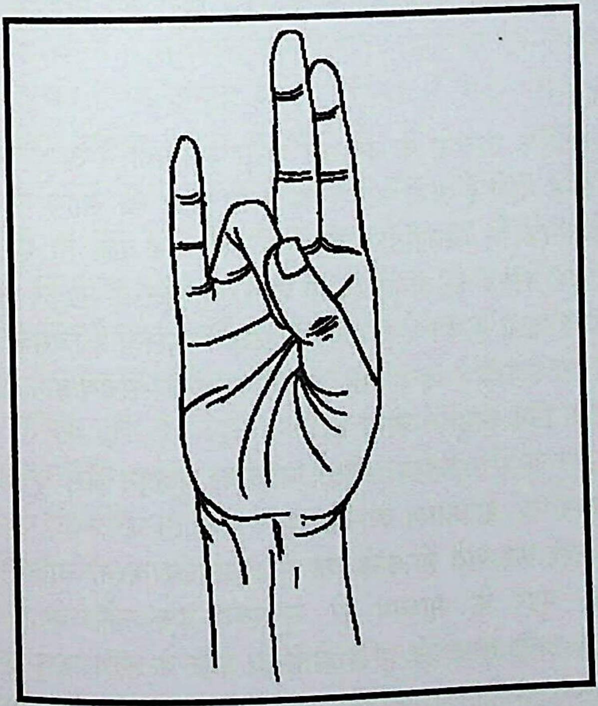

सूर्य मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की कमी है तो बाहर से दिखाई देने वाला स्थूल शरीर भी किसी काम का नहीं होता। सूर्य किरणों के प्रभाव से व्यक्ति ऊर्जावान बनता है। सूर्य मुद्रा से ऊर्जा का आकर्षण एवं संवर्द्धन होता रहता है। यहाँ सूर्य मुद्रा जगत व्यापी ऊर्जा को द्रुतगति से संग्रहित एवं आवृत्त शक्ति को अनावृत्त करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

इस मुद्रा की मूल्यवत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने में उपयोगी पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। फिर अनामिका अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूलभाग पर लगायें। फिर अंगूठे से अनामिका अंगुली पर हल्का सा दबाव देते हुए शेष अंगुलियों को सीधी रखते हुए सूर्य मुद्रा बनती है।

निर्देश– सूर्य मुद्रा का प्रयोग पूर्वोल्लिखित आसन में निरंतर आठ मिनट किया जा सकता है। सर्दी काल में 24 मिनट तक भी किया जा सकता है किन्तु ग्रीष्म काल में उष्णता बढ़ जाने के भय से एक साथ अधिक समय तक नहीं करना चाहिए।

अधिक कृशकाय वाले व्यक्ति को इस मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

सुपरिणाम

- शारीरिक संरचना के अनुसार शरीर शास्त्रियों ने अनामिका को पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक माना है तथा अंगूठे को अग्नि तत्त्व का स्थान माना है जबकि सामुद्रिक वैज्ञानिकों ने अनामिका को सूर्य का स्थान कहा है। ऐसी स्थिति में अनामिका (सूर्य तत्त्व) को अंगूठे (अग्नि तत्त्व) के मूल में रखकर अंगूठे से उस पर दबाव दिया जाता है तब बहुत अधिक ऊर्जा निकलती है जिसकी तुलना सूर्य ऊर्जा से की जा सकती है। इस तरह अधिक शक्ति का संचय होने के साथ-साथ उस शक्ति का शीघ्र अनुभव होता है।
- इस मुद्रा से आलस्य, नींद, निष्क्रिय, मूर्दापन जैसे दुर्गुण दूर होकर सजगता, अप्रमत्तता, सक्रियता का आविर्भाव होता है। जो प्रमाद या आलस्य के कारण कुछ नहीं कर पाते हों उन्हें यह मुद्रा अवश्य करनी चाहिए।
- इस मुद्रा के माध्यम से सूर्यस्वर शुरू हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप अग्नि तत्त्व की वृद्धि होती है। इसी के साथ कफ सम्बन्धी रोग जैसे दमा, सर्दी, निमोनिया, टी.वी., प्लुरसी, सायनस आदि समस्याओं का अन्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

- इस मुद्रा का सर्वाधिक प्रभाव यह है कि मोटापा दूर होकर शरीर प्रमाण युक्त हो जाता है जिससे आधुनिक यान्त्रिक साधनों के मुहताज नहीं रहना पड़ता। किसी भी प्रकार के दर्द या मस्तिष्क में भारीपन को कम करने में भी उपयोगी है।
- इस मुद्रा के दीर्घकालिक अभ्यास से पर्याप्त ऊर्जा और उष्णता शरीर में परिव्याप्त रहती है जिसके फलस्वरूप पाचन शक्ति का विकास होता है और पुरानी कब्ज की शिकायत दूर होती है।
- उदर सम्बन्धी, सर्दी सम्बन्धी, मोटापा सम्बन्धी आदि कई रोगों का निवारण होने पर मानसिक तनाव भी सहजतया दूर हो जाते हैं।
- धार्मिक दृष्टि से भी अंगूठा एवं अनामिका का प्रयोग मूल्यवान है। अंगूठा एवं अनामिका से ही ललाट (ज्योति केन्द्र) पर तिलक किया जाता है। अनामिका और अंगुष्ठ दोनों प्रति समय तेजस्वी विद्युत प्रवाह करते हैं अतः यौगिक दृष्टि से इनके द्वारा विधि पूर्वक तिलक कर कोई भी स्त्री या पुरुष अपनी अदृश्य शक्ति को अन्य में पहुँचाकर उसकी शक्ति द्विगुणित कर सकता है। इसके पीछे मुख्य हेतु यह है कि अंगूठा एवं अनामिका से निसृत ऊर्जा प्रवाह द्वारा ज्योतिकेन्द्र (पीयूष ग्रन्थि) सक्रिय हो जाता है।
- आध्यात्मिक क्रिया-कलापों में गुरु के द्वारा शक्तिपात भी इसी अंगुली से किया जाता है। इस मुद्रा का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह संकुचित विचारधारा को विराट्ता प्रदान करती है तथा दैहिक पुष्टता के साथ-साथ सूक्ष्म तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करती है। शरीर में नवीन स्फूर्ति, आनन्द का उद्भव और रोम-रोम में ओज का संचार इस मुद्रा प्रयोग के निश्चित फल है।
- भौगोलिक दृष्टि से अंगूठा अग्नि तत्त्व का तथा अनामिका पृथ्वी तत्त्व का विकिरण करते हैं। पृथ्वी ऊर्जा से प्रभावित होती है एवं अग्नि तत्त्व को आत्मसात कर लेती है। अग्नि तत्त्व में संप्रेषण क्षमता है जबकि पृथ्वी तत्त्व संग्राहक है। जहाँ संप्रेषण एवं संग्रहण उभय शक्तियों का संयोजन होता है वहाँ असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं।
- यह मुद्रा शरीरस्थ सप्त चक्रों आदि के सुप्रभावों को उत्पन्न करती है–

चक्र– विशुद्धि, आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** वायु, आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पैराथायरॉइड, पीयूष ग्रंथि, एड्रिनल, पैन्क्रियाज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केन्द्र– विशुद्धि, दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुख, स्वरयंत्र, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, यकृत, तिल्ली आँतें आदि।

- एक्युप्रेशर के अनुसार अंगूठे के मूल में थायरॉइड के सांकेतिक बिन्दु हैं। थायरॉइड के बिन्दुओं पर दबाव पड़ने से उसके स्रावों का संतुलन होता है जिससे शरीर के आकार एवं प्रकार भी संतुलित बनते हैं।

इस प्रकार सूर्य मुद्रा मानसिक विक्षोभों को दूर करने एवं वजन घटाने के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

6. वरुण मुद्रा

वरुण शब्द जल का पर्यायवाची है इसलिए वरुण मुद्रा जल तत्त्व से सम्बन्ध रखती है। जिस कनिष्ठिका अंगुली के माध्यम से वरुण मुद्रा बनायी जाती है वह अंगुली भी जल तत्त्व का ही प्रतिनिधित्व करती है। जल जैविक शक्ति का प्रमुख अंग है, जल ही जीवन है, जल ही प्राण है। जैसे व्यक्ति भोजन के बिना कुछ महीने जीवित रह सकता है किन्तु जल के अभाव में अधिक दिन जीवित रहना कठिन है।

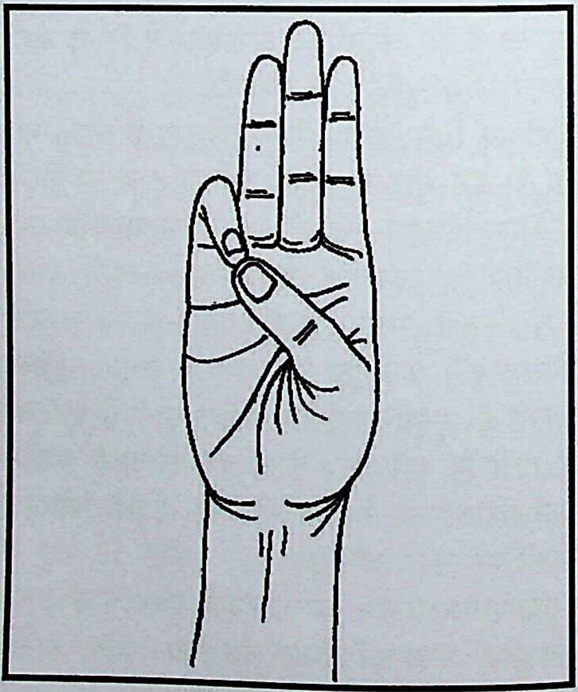

वरूण मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल के अपने गुणधर्म के अनुसार उसे निर्मलता, शीतलता एवं सक्रियता का प्रतीकात्मक माना गया है। यहाँ इस मुद्रा का उद्देश्य देहजन्य जल तत्त्व की कमी से होने वाले रोगों का निवारण करते हुए विचारों को निर्मल, हृदय को शीतल और क्षमता को सक्रिय बनाना है। मूलत: वरुण मुद्रा से शरीर का रक्त और तरल पदार्थों में संतुलन स्थापित होता है।

विधि

इस मुद्रा के लिए पद्मासन या सुखासन में बैठें। फिर कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्शित करें। फिर अंगूठे से कनिष्ठिका अंगुली पर हल्का सा दबाव देते हुए शेष अंगुलियों को सीधी रखने पर वरुण मुद्रा बनती है।[5]

निर्देश– 1. शरीर के लिए अनुकूल मुद्रा में बैठकर इसका प्रयोग सर्दी के समय 8-10 मिनट तक किया जा सकता है। उन दिनों अधिक अभ्यास करने पर जल तत्त्व का प्रवाह असंतुलित होना संभव है और उसके दुष्प्रभाव भी निश्चित ही होते हैं। 2. सामान्य ऋतु में 24 मिनट से 48 मिनट तक की जा सकती है। 3. जुकाम अथवा कफ प्रकृति प्रधान व्यक्ति को वरुण मुद्रा का प्रयोग निर्देश पूर्वक करना चाहिए।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से जल तत्त्व की न्यूनता से होने वाली बीमारियाँ जैसे गेस्ट्रोएन्ट्राइटिस, डायरिया, डी-हाईड्रेशन, अजीर्ण, अपच, कब्जियात ठीक हो जाती है।
- शरीर का रूखापन दूर होता है तथा त्वचा मुलायम, चिकनी, स्निग्ध बनती है। चेहरे पर पड़ी झुर्रिया समाप्त होती है। रक्त का विकार एवं तज्जन्य रोगों की उपशान्ति होती है। शरीर के लावण्य एवं कान्ति में निखार आता है। त्वचा सम्बन्धी तकलीफें जैसे– सोरायसीस, खुजली, दादर आदि में भी लाभ पहुँचाती है।
- इस मुद्राभ्यास से प्यास का अनुभव कम होता है अथवा बुझ जाती है। इस अपेक्षा से साधनाशील व्यक्तियों के लिए यह मुद्रा अत्यन्त ही उपयोगी है।
- जल तत्त्व के संतुलन से शरीर के सभी अवयव संतुलित रहते हैं तथा शरीर संतुलन का प्रभाव मन एवं चेतना पर भी पड़ता है। परिणामत: चेतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति निरर्थक प्रवृत्तियों से मुक्त रहती है एवं मन सत्कार्यों में जुटा रहता है। इससे अनावश्यक पाप कर्मों का बंध भी अवरुद्ध हो जाता है।

- इस मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्रों के अच्छे परिणाम भी प्राप्त होते हैं-

चक्र– मूलाधार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं थायमस ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं, रक्त संचरण तंत्र आदि।

- एक्युप्रेशर के अनुसार बाएं हाथ की कनिष्ठिका अंगुली शरीर के बाएं भाग का नियंत्रण करती है तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठा अंगुली शरीर के दाएं भाग का नियंत्रण करती है। जब इन अंगुलियों पर अग्नि तत्त्व (अंगूठा) का दबाव पड़ता है तब शरीर के दायें-बायें हिस्से स्वतः शक्ति सम्पन्न और स्वस्थ बनते हैं तथा तज्जन्य विकार दूर होते हैं।

संशोधकों के अनुसार अंगूठें के अग्रभाग से कनिष्ठिका के अग्रभाग पर मालिश करने से मूर्च्छा टूटती है। इस कारण आकस्मिक दुर्घटना के समय भी इसे उपयोगी कहा गया है।

7. आकाश मुद्रा

जिस अंगुली के माध्यम से आकाश तत्त्व को संतुलित किया जा सकता है उस अंगुली के स्पर्श से की जानी वाली मुद्रा आकाश मुद्रा कहलाती है। आकाश तत्त्व प्रकृति के प्रत्येक कण में व्याप्त है इसी तरह शरीर के प्रत्येक हिस्से में इस तत्त्व की उपस्थिति है।

भारतीय कोष में आकाश के तीन गुण बताये गये हैं 1. अवकाश–स्थान देना, 2. शब्द – ध्वनि तरंग 3. शून्यता-रिक्तता। इस मुद्रा के प्रयोग से हृदय रूपी आकाश में निर्मल भावधारा बहती है, स्वर सुनाई दे सकें ऐसे कान से संबंधित रोग ठीक हो जाते हैं और अदृश्य (दृश्य जगत से शून्य) शक्तियों का अहसास होता है।

हम देखते हैं कि इस मुद्रा का सम्बन्ध शारीरिक एवं भावनात्मक उभय जगत से है। इस तरह आकाश मुद्रा देह निरोगता और भावनाजनित निर्मलता के उद्देश्य से की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

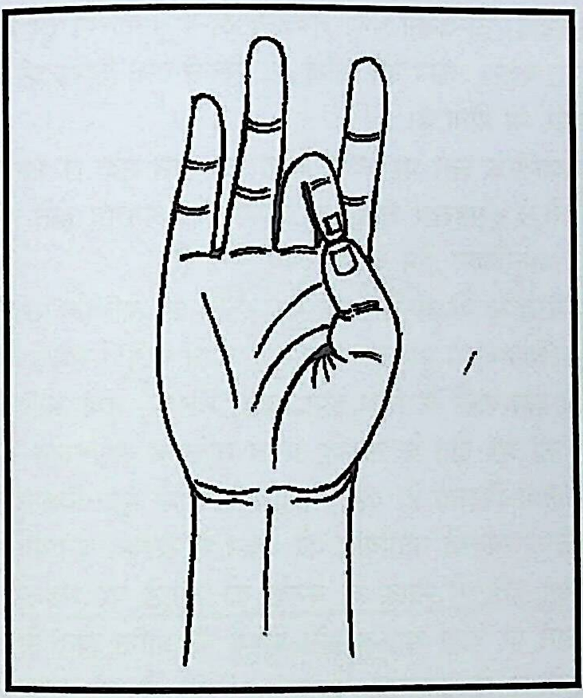

आकाश मुद्रा

विधि

इस मुद्रा के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली वज्रासन में बैठें। फिर मध्यमा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधी रखने पर आकाश मुद्रा बनती है।

निर्देश– आकाश मुद्रा का अभ्यास वज्रासन में प्रथम बार 16 मिनट तक ही करें। फिर धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा 48 मिनट तक किया जा सकता है।

सुपरिणाम

- यह महत्त्वपूर्ण चमत्कारिक मुद्रा है। यह मुद्रा कई बीमारियों में गुणकारी है। इससे कैल्सियम की पूर्ति होकर हड्डियों को पोषण मिलता है। स्टीरोइडस और कोर्टीझन लेने वाले दर्दी को उस दवाई की असर से बचाती है।
- कान का बहना, कान का दर्द, कम सुनना, बहरापन आदि कर्ण रोग ठीक हो जाते हैं तथा कर्णेन्द्रिय शक्ति विकसित होती है। दांत की तकलीफ भी दूर होकर दाँत मजबूत बनते हैं।
- मध्यमा अंगुली और हृदय का गहरा सम्बन्ध होने से हृदय सम्बन्धी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोग जैसे- रक्तदाब, अेन्जाइन पेन, तज्जन्य अन्य बीमारियाँ दूर होती है। इस मुद्रा से टान्सिल बढ़ना, कान एवं आँख की एलर्जी तथा लिम्फ की सूजन आदि रोगों का उपचार भी होता है।

- आध्यात्मिक स्तर पर ध्यान करते वक्त इस मुद्रा से भावधारा निर्मल होती है। ज्ञान केन्द्र (सहस्रार चक्र) पर प्रकंपन के अनुभव होते हैं तथा दिव्य शक्ति के साथ अनुसंधान होने का अनुभव होता है।

ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा शरीर की तात्त्विक स्थिति (आकाश तत्त्व) को न्यूनाधिक करते हुए उसे दोष मुक्त करने में पूर्ण समर्थ है। किसी ग्रह के दुष्प्रभाव को कम करने के लिए हीरा, पन्ना, नीलम, मूंगा आदि विभिन्न रत्न पहने जाते हैं। जो ग्रह दोष के कारण उत्पन्न तात्त्विक असंतुलन को दूर करते हैं, व्यक्ति को लाभ मिलता है। यही सिद्धांत योगमयी मुद्रा विज्ञान के साथ है। इसे भी ग्रह की रहस्यमयी गतिविधि को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

- भौतिक दृष्टि से माला के मनके को अंगूठे पर रखकर मध्यमा के अग्रभाग से फेरने पर बाह्य समृद्धि और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

- एक्युप्रेशर के अनुसार मध्यमा अंगुली में भी साइनस सम्बन्धी रोगोपचार के बिन्दु हैं। उन पर दबाव होने से जुकाम ठीक हो जाता है। ज्योतिष के अनुसार यह शनि की अंगुली है अग्नि और शनि का संयोग होने पर अध्यात्म शक्ति का जागरण होता है। मुनि श्री किशनलालजी के मतानुसार आकाश मुद्रा का अभ्यास व्यक्ति के शरीर में स्फुरण शक्ति और जागृति उत्पन्न करता है।

8. ध्यान मुद्रा

इस मुद्रा के दौरान जिस तरह की शारीरिक आकृति बनती है वह वीतराग अवस्था को द्योतित करती है इसलिए इसे वीतराग मुद्रा भी कह सकते हैं। वीतरागता से अभिप्राय राग-द्वेष, जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि वैभाविक पर्यायों से सर्वथा विमुक्त आत्मा की अवस्था है। यह चेतना की शुद्ध अवस्था है। निरावरण ज्ञान द्वारा चेतन सत्ता का बोध होता है। राग-द्वेष जन्य परिणामों से निर्मल ज्ञान विकृत बनता है, विकृत ज्ञानावस्था में रही हुई आत्मा ही अशुभ कर्मों का बन्ध करती है। ध्यान मुद्रा से विकारजन्य दूषित अवस्था वीतराग अवस्था में परिवर्तित होती है। "जैसी मुद्रा वैसा भाव, जैसा भाव वैसी मुद्रा" इस सिद्धान्त के अनुसार ध्यान मुद्रा (वीतराग मुद्रा) में सुस्थिर होने से वीतराग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

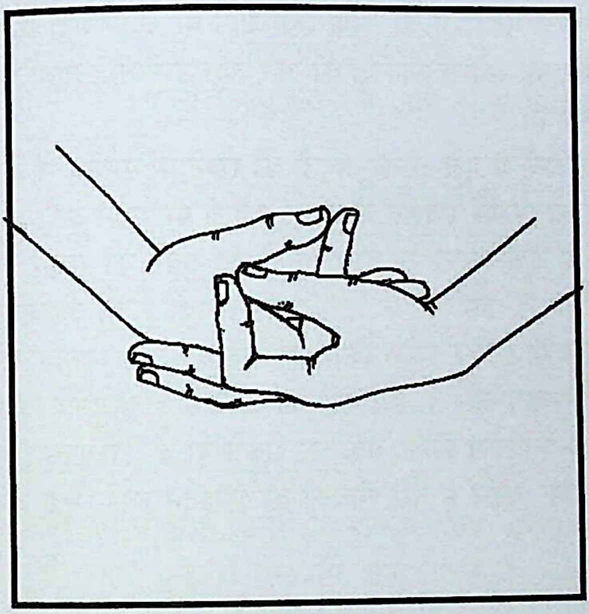

ध्यान मुद्रा

भाव का क्रमशः अभिवर्द्धन होने लगता है। अतः वीतराग मुद्रा को ब्रह्म मुद्रा भी कहा जाता है।

यौगिक परम्परा में यह मुद्रा धर्मगुरुओं और आराधकों द्वारा की जाती है। यह शान्ति एवं स्थिरता की प्रतीक है।

विधि

इस मुद्रा की तीन विधियाँ हैं—

प्रथम विधि के अनुसार पद्मासन या सुखासन में बैठकर बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली रखें, फिर दोनों अंगूठों को एक दूसरे से संयुक्त कर एवं दोनों हाथों को एक दूसरे से मिलाते हुए उन्हें नाभि के ठीक नीचे स्थापित करना ध्यान मुद्रा है।[6]

द्वितीय विधि के अनुसार पद्मासन, सुखासन या वज्रासन में बैठकर बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली रखें। फिर दोनों अंगूठों को एक-दूसरे के ऊपर रखते हुए नाभि के पार्श्व में सुस्थिर करना ध्यान मुद्रा है।[7]

तृतीय विधि के अनुसार दोनों हथेलियाँ आकाश की तरफ रहें, अंगूठा और तर्जनी का अग्रभाग परस्पर में स्पर्शित हों, शेष तीन अंगुलियों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिथिलता पूर्वक मध्यरेखा की तरफ रखी जाने पर ध्यान मुद्रा बनती है। इसमें बायां हाथ गोद में, हथेली आकाश की ओर तथा उसी तरह दायां हाथ बायें हाथ के ऊपर रहता है।

उक्त विधियों में मूल अन्तर अंगूठों को रखने के सम्बन्ध में हैं। प्रथम विधि में द्वयांगुष्ठों को परस्पर स्पर्शित करते हुए हथेली पर रखने का निर्देश है जबकि दूसरी विधि में एक अंगूठे पर दूसरे अंगूठे को रखने का सूचन है।

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए पद्मासन सर्वश्रेष्ठ है। अपवादतः सुखासन या वज्रासन में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। 2. ध्यान करते समय इस मुद्रा का ही उपयोग करें। 3. इस मुद्रा का अभ्यास इच्छानुसार किसी भी समय एक मिनट से पैंतालीस मिनट तक कर सकते हैं। 4. अध्यात्म दिशा की ओर जो अग्रसर होना चाहते हैं वैसे साधकों को प्रतिदिन ध्यान मुद्रा करनी चाहिए।

सुपरिणाम

- आध्यात्मिक जगत में ध्यान मुद्रा का विशिष्ट स्थान है। यह मूलतः उच्चकोटि का साधनाभ्यास है। इसलिए इस मुद्रा से वैयक्तिक लाभ अधिक मिलते हैं।

इस मुद्रा में स्थिर होने पर दीर्घकालिक एकाग्रता का विकास होता है तथा समाधि अवस्था और आत्मसाक्षात्कार जैसे उच्च भूमिका पर आरोहण होता है।

इस मुद्रा के प्रभाव से शरीर के चारों ओर एक विशिष्ट कवच का निर्माण होता है जिससे अनिष्ट तत्त्व साधना में बाधक नहीं बन सकते।

'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' की न्यायोक्ति के अनुसार ध्यान मुद्रा से सात्त्विक विचारों का आविर्भाव होता है जिसके परिणामस्वरूप उस व्यक्ति का आभामंडल (ओरा) तेजोवलय प्रभावशाली और ओजस्वी बनता है।

पद्मासन में बैठने पर मेरुदंड सीधा रहता है। जिससे सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह ऊपर की ओर होने लगता है और वह व्यक्ति के विचारों को प्रभावित कर उसे आत्माभिमुखी बनाता है। इस तरह अध्यात्म दिशा की ओर अग्रसर होता है।

इस मुद्रा में द्वयांगुष्ठों के मिश्रित होने से अग्नि ऊर्जा उत्पन्न होती है जिससे मनोदैहिक सक्रियता जैसे गुणों का विकास होता है। यदि ध्यान काल में इस मुद्रा से अधिक ऊर्जा का अनुभव हो तो दोनों अंगूठों को एक-दूसरे से न मिलाते हुए एक अंगूठे पर दूसरे अंगूठे को रख सकते हैं। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्दिष्ट दोनों विधियाँ समरूप लगती है।

• मनोजगत की दृष्टि से मानसिक शांति का अनुभव होता है तथा विपरीत संयोगों में भी मन:स्थिति संतुलित बनी रहती है। अनावश्यक हलचलों से मन विरक्त हो जाता है।

• स्वभाव जगत में भी आशातीत परिवर्तन आता है। अत्यन्त क्रोधी प्रकृति का मानव भी क्षमावान एवं शांत स्वभावी बन जाता है।

• दैहिक जगत के सन्दर्भ में विचार किया जाए तो पंच तत्त्वों का समीकरण होता है, स्नायुमंडल एवं शरीर के अन्य अवयव सशक्त बनते हैं, देह ऊर्जा में संतुलन बना रहता है, दोनों रक्त चाप साम्य भाव में रहते हैं तथा हृदय की दुर्बलता दूर हो जाती है।

• वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो इस मुद्रा में दोनों हाथों का संयोग होने से शक्ति का वलय बन जाता है जिससे ध्यानारूढ़ व्यक्ति गहराई से ध्यान क्षेत्र में उतर सकता है। हमारे शरीर में धन और ऋण (पोजेटिव-नेगेटिव) ऐसे दो तरह की शक्तियाँ है। दोनों हाथों का सम्मिलन होने से अपूर्व शक्ति का जागरण होता है उससे ध्यान मुद्रा में अद्‌भुत स्थिरता और तटस्थता आती है।

• मुख्य रूप से यह मुद्रा निम्न शक्ति केन्द्रों के दुष्प्रभावों को दूर करती है–

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

9. समन्वय (सूकरी) मुद्रा

इस मुद्रा के नाम से ही यह सुस्पष्ट है कि इसमें पाँचों अंगुलियों को परस्पर एक-दूसरे से स्पर्शित करते हुए रखते हैं इसलिए इसे समन्वय मुद्रा कहा गया है। इस मुद्रा में अंगुलियों एवं अंगुष्ठों को संयोजित करने पर हाथ का आकार सूअर के मुँह की तरह हो जाता है इसलिए कतिपय ग्रन्थों में इसे सूकरी मुद्रा के नाम से परिभाषित किया गया है।

उपलब्ध साहित्य के अनुसार इस मुद्रा का उपयोग प्रमुखतया तंत्र साधना, मंत्र जाप, यज्ञ विधान, संकल्पपूर्ति इत्यादि कार्यों की सफलता के लिए किया जाता है। इस दृष्टि से समन्वय मुद्रा को सर्वकार्यसिद्धि मुद्रा भी कह सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

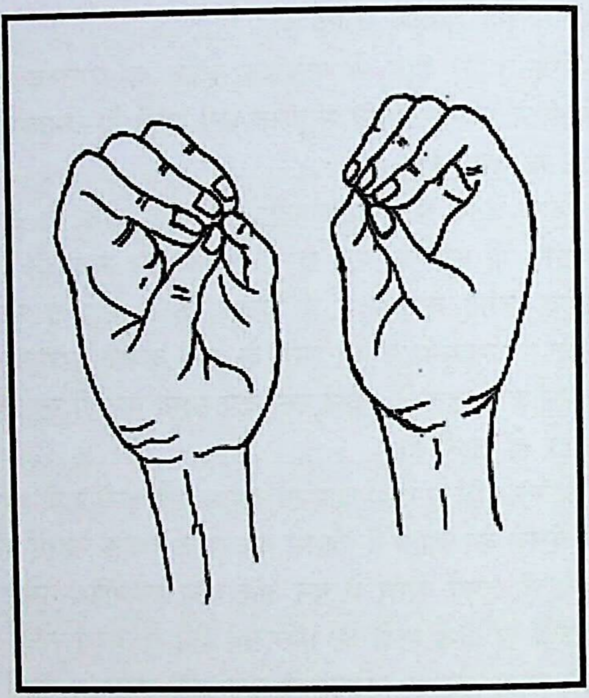

समन्वय मुद्रा

कुछ विद्वानों के मतानुसार यह मुद्रा शान्ति एवं पुष्टि (सांसारिक सुख की प्राप्ति) के लिए की जाती है।

विधि

इस मुद्राभ्यास के लिए अत्युत्तम पद्मासन या सुखासन में बैठ जायें। तत्पश्चात पाँचों अंगुलियों के अग्रभागों को मिलाकर मुद्राकृति को इस तरह रखें कि अंगूठों का अग्रभाग भूमि की ओर रहें तथा चारों अंगुलियों के नाखून आसमान की ओर रहें। इस तरह समन्वय मुद्रा अर्थात सूकरी मुद्रा बनती है।[8]

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए पद्मासन या सुखासन अति उपयोगी है। 2. इस अभ्यास के लिए पाँच मिनट से लेकर अड़तालीस मिनट तक का समय बढ़ाया जा सकता है। एक समय में इससे अधिक प्रयोग न करें, क्योंकि शक्ति का संतुलन तो उचित है किन्तु अधिक शक्ति अनर्थ भी करती है अतः संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। 3. इसका प्रयोग इच्छानुसार किसी भी समय किया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपरिणाम

- समन्वय मुद्रा के निम्नोक्त परिणाम बताए गए हैं–
- भौतिक दृष्टि से पाँचों अंगुलियों के अग्रभाग परस्पर योजित होने से तत्स्थानीय पाँच तत्त्वों का सम्मिलन होता है उससे तत्त्वों का संतुलन बना रहता है।
- पंच तत्त्वों का सम्मिलन होने पर चेतना से उस तरह की शक्ति निःसृत होती है जिससे मंत्र शक्ति के प्रायोगिक शक्ति का कोई सामना नहीं कर पाता।
- यह मुद्रा शक्तिशाली और अत्यधिक रहस्यमय योग स्थिति की मुद्रा है। यदि इस मुद्रा का प्रयोग सम्यक रूपेण किया जाये तो साधक की प्रकृति में अतुल पराक्रम और शक्ति का उदय हो सकता है। चेतना शक्ति का विकास होता है। मनःशक्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। अनिष्ट शक्तियों का निवारण होता है और इष्ट कार्य की उपलब्धि होती है।
- अध्यात्म दृष्टि से सौहार्द्रता, परदुःखकातरता, सहिष्णुता, मित्रता, ऋजुता जैसे उच्चस्तरीय गुणों का जन्म होता है। इस मुद्रा पूर्वक साधना करने से स्वाभाविक शक्तियाँ उजागर होती है।
- यौगिक परम्परा की यह प्रभावशाली मुद्रा शक्ति केन्द्रों के असंतुलन को संतुलित करती है इससे तज्जनित समस्त प्रकार के अच्छे लाभ हासिल होते हैं–

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे।

विशेष– पौराणिक वैदिक परम्परा में माना जाता है कि भगवान विष्णु ने सूकर अवतार में पृथ्वी का अपने दांतों से उत्खनन कर उसे प्रगट करने का महान पराक्रम किया था, इस वजह से भी इस मुद्रा को शक्तिशाली मुद्रा के रूप में स्वीकार किया गया है। इस मुद्रा का प्रयोग समस्त अभिचार संबंधी विधानों हेतु एवं अनिष्ट कार्यों के लिए किये गए यज्ञ के विधान में किया जाता है। इस मुद्रा के द्वारा मारण, उच्चाटन तथा अन्य मारक प्रयोगों में तत्सम्बन्धी मन्त्र का उच्चारण करते हुए आहुति दी जाती है। इस मुद्रा का प्रयोग अनिष्टकारी तान्त्रिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग में भी किया जाता है। सूकरी मुद्रा द्वारा किये गए मन्त्र शक्ति के प्रयोग के प्रभाव को संसार की कोई शक्ति कुंठित नहीं कर सकती। उसका प्रभाव अवश्य होकर ही रहता है।

10 हंसी मुद्रा

संस्कृत कोष का 'हंस' शब्द अनेक अर्थों का वाचक है। इसे ब्रह्मा का वाहन माना जाता है, बरसात के आरंभ में मानसरोवर की ओर उड़ता हुआ बताया जाता है, विद्यादायिनी सरस्वती देवी को तो हंसवाहिनी ही कहा जाता है। हंस की गति (चाल) शुभ मानी गई है। भारतीय कवियों ने हंस को दूध और पानी पृथक्-पृथक् करने वाला शक्ति सम्पन्न पक्षी के रूप में निर्दिष्ट किया है।

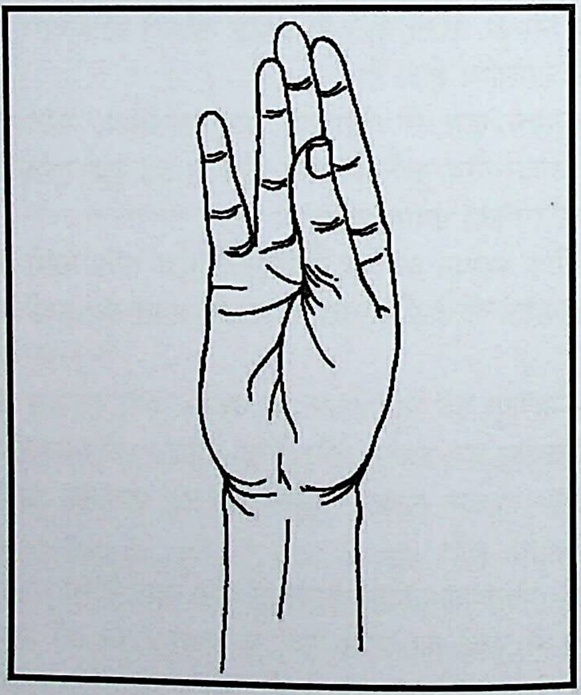

हंसी मुद्रा-1

संस्कृत हिन्दी कोश में हंस शब्द के आत्मा-परमात्मा-ब्रह्म-सूर्य इत्यादि अर्थ भी किये गये हैं।[9]

प्रस्तुत प्रकरण में हंस का तात्पर्य विवेक से है। इसे विवेक का प्रतीक माना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सुखी जीवन का राज विवेक है। जहाँ विवेक हो वहाँ प्रतिकूल अनुकूल बन जाता है, दुःख-सुख में बदल जाता है, संघर्ष-शान्ति में परिवर्तित हो जाता है। हंसी मुद्रा का प्रयोजन बुझे हुए विवेक रूपी दीप को प्रज्वलित करना है। योग परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा शांति और पौष्टिकता के जरूरतों को पूर्ण करने की सूचक है।

विधि

हंसी मुद्रा के तीन प्रकारान्तर हैं– **प्रथम विधि के अनुसार** स्वयं के लिए जो भी आसन अनुकूल हो उसमें बैठ जायें। उसके पश्चात तर्जनी-मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को एक-दूसरे से स्पर्श करते हुए निकट रखें। फिर अंगूठे के अग्रभाग को हल्का सा दबाव देते हुए मध्यमा अंगुली के मध्य इस तरह रखें कि अंगूठे का स्पर्श अनामिका और तर्जनी अंगुलियों से भी हो, कनिष्ठा अंगुली को सीधा रखें यह हंसी मुद्रा है।[10]

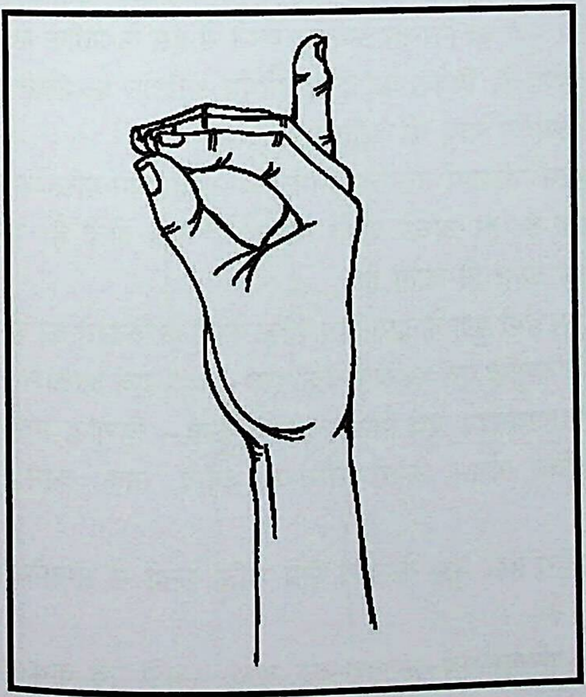

हंसी मुद्रा-2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी विधि के अनुसार कनिष्ठिा अंगुली को छोड़कर शेष तीनों अंगुलियों के अग्रभाग से अंगूठे के अग्रभाग को हल्का सा दबाव देते हुए स्पर्श करवाना हंसी मुद्रा है।[11]

तीसरी विधि के अनुसार हथेली बाहर की ओर रहें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभाग अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करें तथा तर्जनी अंगुली आकाश की ओर सीधी रहें इस तरह भी हंसी मुद्रा बनती है।

निर्देश– 1. इस मुद्रा हेतु सर्वोत्तम आसन सुखासन अथवा उत्कटासन है। इन्हीं आसनों में से एक का उपयोग करें। 2. इस मुद्रा का अभ्यास प्रारम्भ में आठ मिनट, कुछ अवधि के पश्चात प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़ाते हुए 48 मिनट तक बढ़ा सकते हैं। 3. इसका प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा में हंस के मुख का आकार बनता है इसलिए इसे हंसी मुद्रा कहते हैं।
- हंसी मुद्रा का निरन्तर अभ्यास करने से हंस के प्रतीक रूप विवेक गुण का जागरण होता है, विवेक का दीपक निर्धूम अग्निवत प्रज्वलित रहता है, लौ का प्रकाश निष्प्रकंप वायु की भाँति बढ़ता रहता है।
- आत्म परिणाम उत्तरोत्तर निर्मल बनते हैं। मन:मस्तिष्क हल्केपन का अनुभव करता है। हर अच्छे कार्यों में पूर्णता प्राप्त होती है। सभी तरह की समस्याओं का अन्त हो जाता है।
- प्रथम हंसी मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्रों के विकारों का शमन होता है–

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पैराथायरॉइड एवं पिनीयल ग्रंथि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** ऊपरी मस्तिष्क, आँखें, नाक, कान, गला, मुँह, स्वरयंत्र।

- द्वितीय हंसी मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्रों से सम्बन्धित सर्व प्रकार के लाभ होते हैं–

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष प्रभावित अंग– पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, रक्त संचरण तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ।

- अर्वाचीन प्रतियों के अनुसार हंसी मुद्रा का प्रयोग पौष्टिक कर्म में किया जाता है। इससे धन-धान्य आदि की वृद्धि होती है एवं परास्त व्यक्ति विजयी बनता है। यह केवल यज्ञीय मुद्रा है। इस मुद्रा में जप आदि करने का विधान नहीं है। मृगी, हंसी और सूकरी मुद्राओं से अग्नि में शाकल्य समर्पित की जाती है। वैसे यज्ञ में पूजन आदि के अवसर पर विभिन्न मुद्राओं का सहस्रों बार प्रदर्शन और प्रयोग करने की आज्ञा है।

11. मृगी मुद्रा

संस्कृत व्याकरण के अनुसार मृग् + क् प्रत्यय से मृग शब्द बनता है। मृग हरिण को कहते हैं। स्त्रीलिंग में मृगी शब्द बनता है। वह हरिणी का प्रतीक है। संस्कृत कोश में मृग: शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं किन्तु यहाँ 'हरिण' अर्थ ही ग्राह्य है।

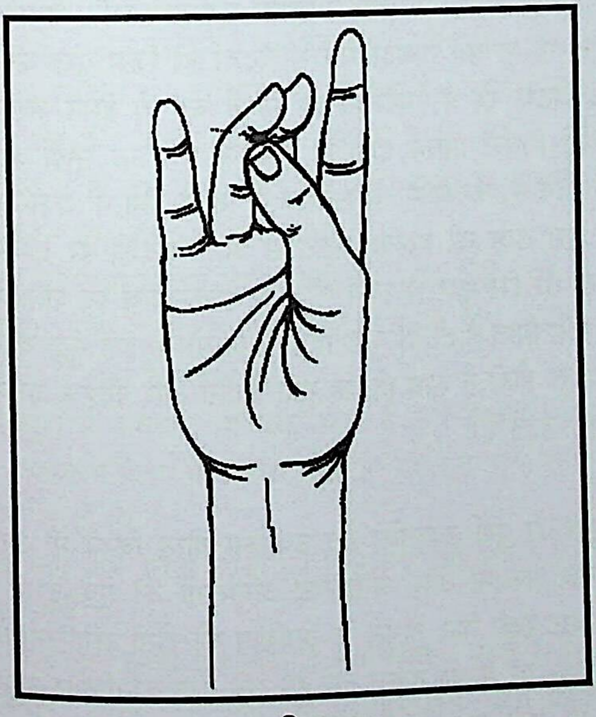

मृगी मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय परम्परा में हरिण को सात्त्विक, निश्छल एवं ऋजु परिणामी माना गया है। इसे शाकाहारी प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। मृग की छाल पवित्र मानी गई है, अत: ऋषि-महर्षि लोग उसे अपने आसन के रूप में उपयोग करते हैं। मृग की आँखें सौन्दर्य का प्रतीक है, जिस नारी के नेत्र मृग के समान होते हैं उसे कवियों ने 'मृगनयनी' का सम्बोधन दिया है। संस्कृत काव्यों में इस सम्बन्ध में कई वृत्तान्त प्राप्त होते हैं जैसे मृग भोला प्राणी है, ऋषियों के कुटी आंगन में छलांग लगाते हुए घूमते रहते हैं, झुण्ड के झुण्ड जलकुण्ड के समीप खड़े रहते हैं इत्यादि। मृगी मुद्रा का मुख्य प्रयोजन जीवन व्यवहार में सात्त्विकता, मन: परिणामों में ऋजुता एवं वाणी वर्त्तन में निश्छलता का अभ्युदय है।

हम जानते हैं कि मृग नाभि में अत्यन्त सुगन्धित कस्तूरी रहती है वह उस सुगन्ध की प्रतिसमय अनुभूति करता है लेकिन उसे इस बात की समझ नहीं होती कि वह सुगन्ध उसके स्वयं के निकट है। उसे पाने के लिए इत्र-तत्र घूमता रहता है, परेशान होता रहता है।

हम पशु की अपेक्षा अधिक समझदार एवं ज्ञान शक्ति सम्पन्न हैं। उपरान्त हमारी स्थिति भी मृगवत अथवा मृग से बदतर है। जिस सुख की चाह में हम घूम रहे हैं, भटक रहे हैं, परेशान हो रहे है वह तो हमारे स्वयं के विशुद्ध स्वभाव में है, निर्मल आत्म दशा में है किन्तु हम उन सुखों को मकान में, परिवार में, पत्नि में, बच्चों में, धन-वैभव में, खाने-पीने में, ऐश-आराम में ढूँढ रहे हैं और इस तरह की मिथ्या प्रवृत्ति से आत्म प्रदेशों पर दुष्कर्मों की परत चढ़ाते जा रहे हैं। इस मुद्रा से स्वयं की ओर झांकने एवं स्व शक्तियों को देखने की सम्यक दृष्टि प्राप्त होती है। कुछ विद्वानों के मत से यह मुद्रा यौगिक परम्परा में अधिक प्रयुक्त होती है साथ ही यह मुद्रा शान्ति और पौष्टिक जरूरतों को पूर्ण करने हेतु की जाती है।

विधि

इस मुद्रा की पूर्ण उपलब्धि हेतु उपासना योग्य किसी भी आसन में बैठ जायें। तदनन्तर मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को एक-दूसरे से स्पर्शित करते हुए निकट रखें। फिर अंगूठे के अग्रभाग को दोनों अंगुलियों के मध्यभाग अथवा प्रथम पौर पर हल्का दबाव देते हुए रखें तथा कनिष्ठिका और तर्जनी को सीधा रखने पर मृगी मुद्रा बनती है।[12]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए सुखासन, उत्कटासन एवं उपासना योग्य सभी आसन उत्तम हैं। इनमें से किसी एक आसन का चयन कर नित्यप्रति उसी आसन का उपयोग करें।

2. इस मुद्रा को प्रारम्भ में 8-10 मिनट करें। फिर धीरे-धीरे 48 मिनट तक का अभ्यास बढ़ाया जाये। सभी मुद्राओं में 48 मिनट की अवधि का जो उल्लेख है वह भावधारा की अपेक्षा से है। कोई भी साधक एक समान भावों में 48 मिनट से अधिक नहीं रह सकता है।

3. मृगी मुद्रा यथानुकूलता किसी भी समय की जा सकती है। 4. मुद्रा काल में स्वयं की भावधारा को विकृत या आवेग पूर्ण न होने दें, अन्यथा उस स्थिति में ताप की मात्रा बढ़ सकती है।

सुपरिणाम

इस मुद्रा में हाथों का आकार मृग जैसा बनता है इसलिए इसे मृगी मुद्रा कहते हैं। मृगी मुद्रा करने से निम्न परिणाम पाये जाते हैं–

- मृगी के समान सरलता, सहजता एवं सहिष्णुता गुण का प्रादुर्भाव होता है। भगवान महावीर ने उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है– **''सोही उज्जूय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई''** अर्थात ऋजुभूत (सरल) व्यक्ति की ही शुद्धि होती है और सरल हृदय में ही धर्म स्थिर रहता है, टिका रहता है। आशय है कि मृगी मुद्रा से धर्म करने का अधिकार प्राप्त होता है।
- ऋजु परिणामों से इष्ट देवी-देवता भी प्रसन्न होते हैं।
- ऋजुता वृत्ति से अहंकार भी नष्ट होता है और व्यक्ति नम्र होकर भगवद् उपासना में लीन हो जाता है।
- ऋजुगुण से भावधारा सात्त्विक बनती है और चित्त की स्थिरता बढ़ती है परिणामतः अध्यात्म दिशा में अग्रसर होता है। यह मुद्रा मृगी रोग के निवारण में भी सहयोग करती है।
- यह मुद्रा निम्न शक्ति केन्द्रों की विकृतियों का शमन कर एक स्वस्थ जीवन प्रदान करती है–

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनियल, पीयूष, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति, दर्शन, एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, स्नायुतंत्र,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरतंत्र, कान, नाक, गला, मुँह आदि।

• तंत्र विज्ञान के अनुसार इस मुद्रा का सर्वाधिक उपयोग जाप, उपासना, यज्ञानुष्ठान आदि के निमित्त किया जाता है। ग्रन्थों में यज्ञ करते हुए तीन प्रकार की मुद्राओं से आहूति देने का निर्देश है। उन मुद्राओं के नाम ये हैं- 1. मृगी 2. वराही (सूकरी) और 3. हंसी मुद्रा।

मृगी मुद्रा यज्ञ की प्रधान मुद्रा है। शुभ कर्मों के अनुष्ठान में जिन यज्ञों का विधान है उनमें सर्वाधिक मृगी मुद्रा का ही प्रयोग किया जाता है। इस मुद्रा में मध्यमा और अनामिका अंगुली के मध्य में अंगुष्ठ के अग्रभाग को स्पर्शित करते हैं जिससे हाथ का आकार मृग के मुख के समान हो जाता है। मृगी मुद्रा द्वारा दी गई आहूति से सात्त्विक देवता शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। अनुष्ठान का जैसा संकल्प हो, तदनुरूप ही मुद्राओं का प्रयोग जपात्मक अथवा होमात्मक यज्ञों में करना चाहिए।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार निर्दिष्ट अंगुलियों में दाँत एवं सायनस के बिन्दू हैं। इन पर दबाव पड़ने से सर्दी के दोषों का शमन होता है और दाँत का दर्द मिट जाता है। अंगूठे के अग्रभाग पर दबाव होने से सर्दी, सिरदर्द और तनाव कम होता है।

12. आदिति मुद्रा

आदिति शब्द देवी-देवता का वाचक है। सामान्य तौर पर इस मुद्रा का उपयोग देवी-देवता के सन्दर्भ में किया जाता है। यदि दोनों हाथों को समीप रखकर यह मुद्रा बनाई जाए तो वह किंचित अन्तर के साथ जैन परम्परा में मान्य आह्वान मुद्रा के समान है तथा उस मुद्रा को उल्टा कर दिया जाए तो स्थापना मुद्रा बनती है।

जैन परम्परा में आह्वान मुद्रा के माध्यम से देवी-देवता को आह्वान (आमन्त्रित) किया जाता है और स्थापना मुद्रा से देवी-देवता अथवा प्रभु प्रतिमा की स्थापना की जाती है। आदिति मुद्रा के सम्बन्ध में भी यही उल्लेख किया गया है। अंजलि पूर्वक आकार में यह मुद्रा भी देवी-देवता के आमंत्रण एवं स्थापन में प्रयुक्त होती है। इस चर्चा से ज्ञात होता है कि इस मुद्रा का प्रयोग परमार्थतः देवीय (परमात्म) शक्ति को अर्जित करने एवं सुप्त देवीय तत्त्व को उजागर करने के उद्देश्य से किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

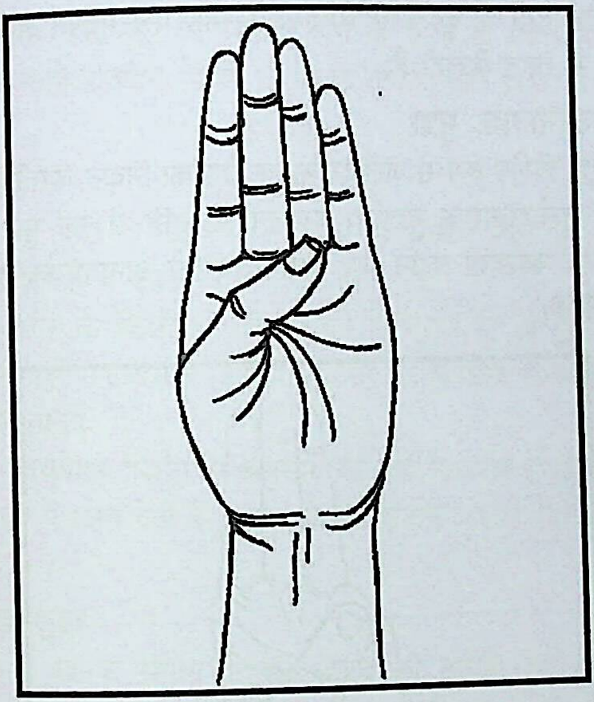

आदिति मुद्रा

विधि

इस मुद्रा की अर्थवत्ता का अहसास करने के लिए सुखासन में बैठें। फिर अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका अंगुली के मूल भाग पर रखें तथा शेष चारों अंगुलियों को एक-दूसरे के समीप सीधी रखने से आदिति मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से जिन्हें सुबह उठते ही एक साथ बहुत छींक आती हो या छींक सम्बन्धी कोई तकलीफ हों तो इस मुद्राभ्यास से दूर होती है।
- अध्यात्म दृष्टि से इस मुद्रा पूर्वक सत्संग (धर्मश्रवण) किया जाये तो अधिक लाभ होता है।
- साधना करते समय उबासी या छींक से विक्षेप होता हो तो इससे दूर होता है इस मुद्रा में ध्यान करने से निश्चित सफलता मिलती है। जैन तीर्थंकर की अधिकतर प्राचीन प्रतिमाएँ इस मुद्रा में पायी जाती है इसलिए इसे मतान्तर से तीर्थंकर मुद्रा भी कहते हैं।
- एक्युप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार यह मुद्रा काम ग्रन्थियों एवं पेशाब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धी परेशानियों को दूर करता है। इसी के साथ मल-मूत्रगत अंगों में लकवा आदि रोगों से राहत मिलती है।

13. जलोदरनाशक मुद्रा

यह मुद्रा विशेष रूप से जलोदर नामक रोग का निदान करती है। इसलिए इसका नाम जलोदरनाशक मुद्रा है। प्रयोजन की दृष्टि से यह मुद्रा शरीर को आरोग्यता एवं स्वस्थता प्रदान कर चित्त दशा को अनावश्यक हलचलों से विमुक्त रखती है।

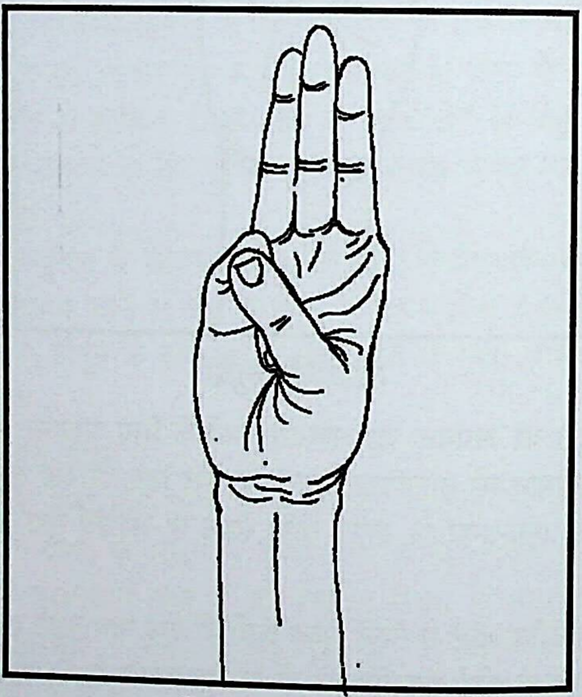

जलोदरनाशक मुद्रा

विधि

इस मुद्रा का प्रयोग करने के लिए पद्मासन या सुखासन में बैठें। फिर कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल भाग पर रखकर, अंगूठे से उस अंगुली पर हल्का सा दबाव दें तथा शेष अंगुलियों को एक-दूसरे से स्पर्शित करते हुए सीधी रखना जलोदरनाशक मुद्रा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– इस मुद्रा को जलोदर रोग के समय ही प्रयुक्त करें। जब तक बीमारी दूर न हो प्रतिदिन 10 से 15 मिनट तक ही करें। इसका असर धीरे-धीरे होता है।

सुपरिणाम

- इस मुद्रा के सहयोग से शरीर में जलीय तत्त्व के बढ़ने से जो बीमारियाँ होती हैं वे उपशान्त हो जाती है।
- शरीर के किसी भी अंग-प्रत्यंग में सूजन हो तो दूर हो जाती है। फाईलेरिया–एलीफन्टायसीस (हाथीपगा) और पेट में पानी भर गया हो तो इससे आराम मिलता है।
- एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा पक्वाशय, छोटी आँत, कंधे के दर्द आदि में राहत देती है। पाचन तंत्र को सशक्त कर तत्सम्बन्धी विकारों को दूर करती है।

14. शंख मुद्रा

शम् + ख के संयोग से शंख शब्द की उत्पत्ति हुई है। 'शम' धातु कल्याणसूचक है और 'ख' शब्द आकाशवाची है। इसका स्पष्टार्थ है कि जो सकल ब्रह्माण्ड में कल्याण और मंगल को उत्पन्न करता है वह शंख है। शंख शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी अर्थ को सूचित करती है जैसे– **'ख' कल्याण खनति जनत्यति इति शंखः'** अर्थात कल्याण को उत्पन्न करने वाला शंख कहलाता है।

भारतीय परम्परा में शंख को मांगलिक वस्तु माना गया है। इतना ही नहीं, सभी धर्म स्थानों में भी इसे बहुत महत्त्व दिया गया है। जैन आम्नाय में शंख का प्रयोग अरिहंत परमात्मा की पूजोपासना के अन्तर्गत होता है। इसी के साथ प्रतिष्ठा, दीक्षा, व्रतधारण, प्रतिमा प्रवेश, रथयात्रा, पदस्थापना आदि मांगलिक प्रसंगों पर भी शंखनाद किया जाता है। इस ध्वनि के माध्यम से मांगलिक कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुआ ऐसा उपस्थित जन समुदाय को सूचित किया जाता है। इतर परम्पराओं में अनेक देवी-देवता जैसे विष्णु, लक्ष्मी, शंकर इत्यादि के चित्रों में इन्हें एक हाथ में शंख पकड़े हुए या उनको बजाते हुए दर्शाया गया है। जैसा कि भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में उल्लेख आता है कि युद्ध प्रारंभ होने के समय कृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने शंख बजाये। प्राचीन यूरोपियन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

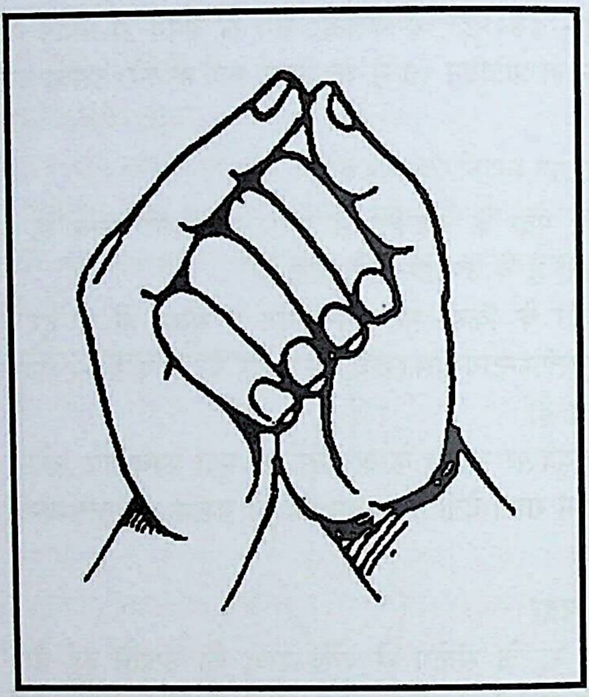

शंख मुद्रा

परम्परा में भी शंख का उपयोग किया जाता रहा है जैसे ट्रिटोन्स विजय ध्वनि के रूप में शंख का प्रयोग करते थे। पश्चिमी परम्परा में इसे लोगोस कहते हैं।

अनुभवी ऋषियों के अनुसार शंख या उसकी ध्वनि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है इसीलिए उसे सृष्टि निर्मापक एवं अन्तर्निहित दिव्य ध्वनि का प्रतीक मानते हैं। जिस प्रकार कठपुतली धागे से संबद्ध रहती है उसी प्रकार यह ध्वनि व्यक्ति को परम चेतना से संयुक्त करती है। उसे नाद या शब्द कहते हैं। जब शंख बजाया जाता है तब वह दीर्घ ॐ ध्वनि के समान भेदक हो जाती है यही कारण है कि धार्मिक उत्सवों और शुभ कार्यों में शंखनाद किया जाता है।

सामान्यतया शंख जन्म से निर्वाण तक की यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर मंगल ध्वनि करता रहता है तथा यह ध्वनि शुभ भावधारा के समय अन्तश्चेतना से ही निसृत होती है। हमारे जीवन तंत्र पर बाह्य ध्वनि का भी सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अदृश्य रूप से विकीर्ण मंगल ध्वनि की तरंगो मात्र से व्यक्ति अनिष्ट का निवारण और इष्ट की उपलब्धि कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि

शंख मुद्रा का त्वरित लाभ हासिल करने के लिए उकडुआसन या समपादासन में बैठें। बाएँ हाथ के अंगूठे को दाहिनी हथेली पर रखकर, दायें हाथ को मुट्ठी रूप में बंद कर दें। बायें हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को दाहिने हाथ के अंगूठे के अग्रभाग से मिलायें तथा बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को दाहिनी हथेली के पीछे की तरफ अंगूठे के पास रखने पर शंख मुद्रा बनती है।

निर्देश– 1. शंख मुद्रा का प्रयोग निर्दिष्ट आसन में अथवा सुखासन या वज्रासन में भी किया जा सकता है। 2. प्रारम्भ में यह अभ्यास 16 मिनट तक किया जाना चाहिए। कुछ दिनों के अनन्तर उसे 48 मिनट तक किया जा सकता है। 3. इस अभ्यास के लिए अहोरात्रि का कोई भी समय दे सकते हैं। 4. इस मुद्रा को भलीभाँति समझकर करना चाहिए, क्योंकि थोड़ी सी भी गलत तरीके से हो तो थायरॉइड स्राव में गड़बड़ होने से शरीर अशक्त हो सकता है अथवा शरीर मोटा हो सकता है। यदि ऐसे विपरीत परिणाम का अहसास होने लगे तो मुद्रा का प्रयोग बंद कर दें। 5. हाथ बदलकर भी मुद्रा बनाई जा सकती है।

सुपरिणाम

इस मुद्रा में हाथों की आकृति शंख के सदृश होती है। इस मुद्रा के ऊपरी हिस्से में अंगुलियों और अंगूठे के बीच में जो भाग खुला रहता है उसका आकार शंख के मुख जैसा बनता है। मुँह से शंख बजाने पर जैसी ध्वनि निकलती है इस मुद्रा के द्वारा भी बजाने की कोशिश की जाए तो वैसी ही आवाज सुनाई पड़ती है। अत: इसे शंख मुद्रा कहा जाता है। शंखस्वर की ध्वनि से अनेक तरह के फायदे होते हैं–

- शारीरिक दृष्टि से देखें तो इस मुद्रा से थायरॉइड ग्रंथि के पाइन्ट दबते हैं जिसके प्रभाव से थायरॉइड रोग दूर होता है। साथ ही थायरॉइड की तकलीफ से होने वाली पुरानी बीमारियाँ भी दूर हो सकती है।
- इसके सहयोग से नाभि के पोइन्ट पर दबाव पड़ता है यदि नाभि खिसकी हुई हो तो अपने स्थान में आ जाती है।

इस अभ्यास से पाचन तंत्र पर अच्छा असर होता है। परिणामत: गहरी क्षुधा का अनुभव होता है और दोनों आँतों में से पुराने मल का निर्गमन हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

76... आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?

वाणी सम्बन्धी किसी तरह की तकलीफ हो उसका सहज निवारण होता है, आवाज मधुर होती है। हकलाना, तुतलाना, लकवे के पश्चात की अस्पष्ट वाणी में भी आशातीत सफलता मिलती है। इसके प्रभाव से धूल या धुँआ की एलर्जी दूर होकर गला साफ होता है। गले के टोनसिल भी समाप्त हो जाते हैं। स्नायु मंडल मजबूत बनता है।

- प्राकृतिक चिकित्सकों के अनुसार आंत, पेट एवं पेडू के नीचे के भाग के विकार दूर करने के लिए शंख मुद्रा और अपान मुद्रा साथ करनी चाहिए। तेजस केन्द्र (नाभि स्थलीय मणिपुरचक्र) के 72000 नाड़ियों की शुद्धि होती है।
- अध्यात्म दृष्टि से अनिष्ट तत्त्वों का विसर्जन और इष्ट तत्त्वों का सर्जन होता है। थायरॉइड ग्रन्थि के सन्तुलन से एकाग्रता बढ़ती है, मन:स्थिति संतुलित हो जाती है और मनोबल में अभिवृद्धि होती है।
- एक्युप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा बेहोशी, मिरगी, ज्वर, हृदय रोग एवं श्वास सम्बन्धी रोगों में शीघ्र लाभ देती है।
- जर्मन देशीय वैज्ञानिकों के अनुसार जिस क्षेत्र विभाग में शंख ध्वनि फैलती है, सुनाई देती है वहाँ थायरॉइड, प्लेग, हैजा आदि रोग निकट भी नहीं आते हैं। ध्वनि तरंगों से वातावरण प्रभावित होता है तदनुसार उस क्षेत्र विशेष में रोगों एवं उपद्रवों का निवारण होता है। शंख मुद्रा के आकार से पांचों तत्त्व अग्नि तत्त्व के साथ संयुक्त होते हैं जिससे तत्सम्बन्धी दोषों का परिहार और अच्छे स्वास्थ्य का निर्माण होता है।

15. सहज शंख मुद्रा

जिस मुद्रा में अत्यन्त सरलता से शंखाकृति बनाई जा सकती हो एवं सुगमता पूर्वक अभ्यास किया जा सकता हो उसे आधुनिक संशोधकों ने सहज शंख मुद्रा नाम से व्यवहृत किया है। इस सम्बन्धी आवश्यक वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

इस मुद्रा के लिए अत्यन्त उपयोगी वज्रासन में बैठ जायें। तत्पश्चात दोनों हाथों की आठों अंगुलियों को एक दूसरे में फँसाकर दोनों हथेलियों को परस्पर दबायें। फिर परस्पर स्पर्शित दोनों अंगूठों को हल्का सा दबाव देते हुए तर्जनी अंगुलियों पर रखना सहज शंख मुद्रा कहलाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

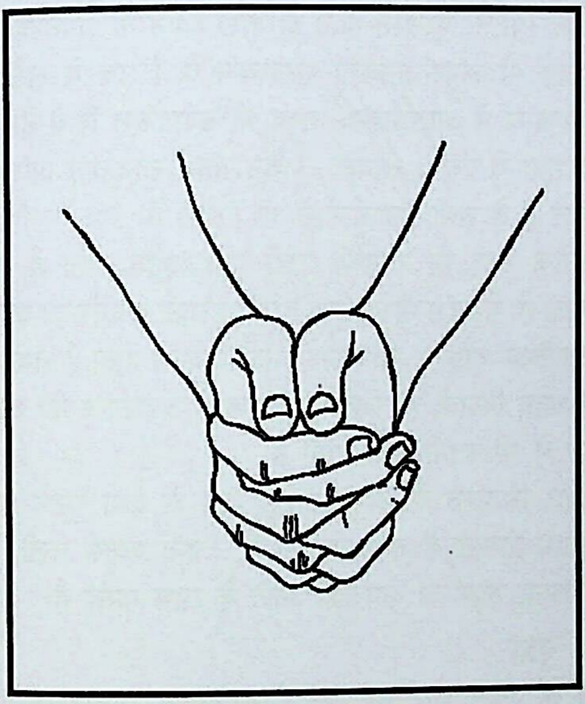

सहज शंख मुद्रा

निर्देश– 1. नीलम संघवी द्वारा लिखित 'मुद्राविज्ञान' के अनुसार सहज शंख मुद्रा का अभ्यास वज्रासन में बैठकर मूलबंध लगाकर (मुद्रा के स्नायु अंदर की ओर खींचते हुए) करें।

2. यह अभ्यास प्राणायाम के साथ करने पर विशेष लाभकारी होता है।

3. प्रतिदिन नियत समय पर कम से कम 10 मिनट अवश्य करें।

सुपरिणाम

सहज शंख मुद्रा विविध दृष्टियों से अनुकरणीय है।

• दैहिक स्तर पर गुदा के स्नायुओं में किसी तरह की तकलीफ हो तो तुरन्त लाभ मिलता है।

• वज्रासन, मूलबंध एवं सहज शंख मुद्रा को एक साथ करने पर शारीरिक संवेदनाओं और प्रकंपनों का अनुभव होता है जिससे चित्त की स्थिरता, धैर्यता, एकाग्रता आदि में अभिवृद्धि होती है।

• जैसे शंखमुद्रा से शंख की आवाज निकलती है उसी तरह की शंख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्वनि इससे भी स्पष्टतः मुखरित होती है। शंख ध्वनि के अपने बहुत फायदे हैं। पिछले कई वर्षों से अनुसंधानकर्त्ता शंखध्वनि के रिसर्च में लगे हुए हैं और उन्होंने इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक तथ्य भी उद्घाटित किये हैं।

- शंख मुद्रा से वचन, आवाज, पाचनशक्ति, उदर और आंत सम्बन्धी जो भी फायदे होते हैं वे सभी इस मुद्रा से भी मिलते हैं।
- प्राकृतिक स्तर पर शंखिनी नाड़ी का उद्भव होता है जिससे शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है। मेरूदंड सीधा रहता है और इसका लचीलापन कायम रहता है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से स्तंभनशक्ति का विकास होता है तथा ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में मदद मिलती है। जितने अनुपात में ब्रह्मशक्ति का अर्जन होता है शुभ भावधारा में भी उतनी वृद्धि होती है।

एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार इस मुद्रा के द्वारा घुटने एवं एड़ी की सूजन में आराम मिलता है तथा यह टी.वी., बन्द श्वास नली, बोलते वक्त श्वास का फूलना, स्वर की कमजोरी आदि में लाभ करती है।

16. पंकज मुद्रा

संस्कृत के पंकज शब्द का अर्थ है कमल। इस शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ होता है 'पंके जायते इति पंकजः' – जो कीचड़ में पैदा होता है वह पंकज (कमल) है।

भारतीय संस्कृति में कमल को निर्लिप्त माना गया है। हम देखते हैं वह कीचड़ में पैदा होता है फिर भी कीचड़ के दलदल में फँसता नहीं, सदैव कीचड़ (कीटमल) से ऊपर रहता है। जैन वाङ्मय में साधक वह कहलाता है जो कमल की भाँति निर्लिप्त जीवन जीता हो, संसार और सम्बन्धों के बीच रहते हुए भी स्वयं को धायमाता की तरह पृथक समझता हो। पंकज मुद्रा का मुख्य ध्येय राग से विराग, ममत्व से निर्ममत्व, अहं से अर्हम्, मोह से मोक्ष की भूमिका पर आरोहण करना है।

विधि

इस मुद्रा के उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए पद्मासन या समपाद आसन में स्थित हो जायें। उसके बाद दोनों अंगूठों को परस्पर मिलायें एवं दोनों कनिष्ठिकाओं को परस्पर मिलायें, शेष अंगुलियों को कमल की पंखुड़ियों की तरह किंचित झुकाकर खड़ी रखना पंकज मुद्रा है।[13]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

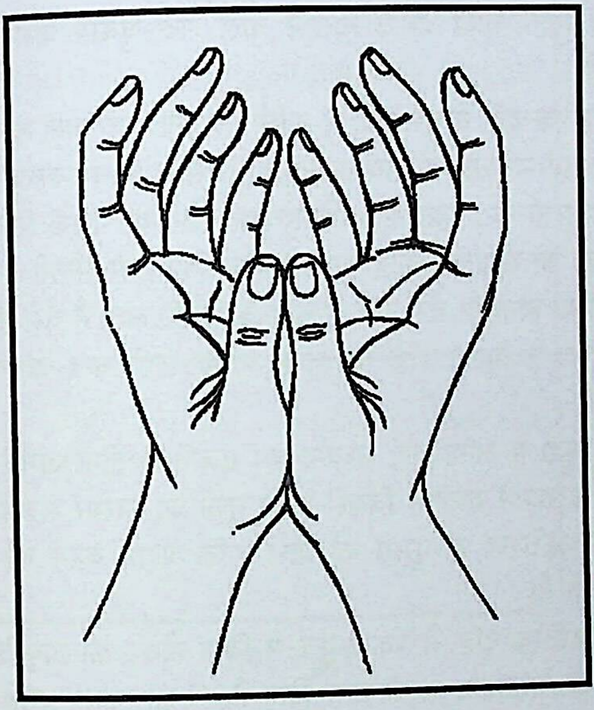

पंकज मुद्रा

निर्देश– 1. इस मुद्राभ्यास हेतु पद्मासन एवं समपाद आसन सर्वश्रेष्ठ है। इस आसन से पंकज मुद्रा के सभी परिणाम सहज प्राप्त होते हैं। 2. मुनि प्रवर श्री किशनलालजी के निर्देशानुसार इस मुद्रा का प्रयोग प्रारम्भ में 16 मिनट करें। कुछ दिनों पश्चात प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़ाते हुए अड़तालीस मिनट तक कर सकते हैं। 3. यदि एक साथ 48 मिनट नहीं कर सकें तो इच्छुक व्यक्ति दो-तीन आवृत्ति में उतना समय पूर्ण करें। 4. पंकज मुद्रा का अभ्यास सर्दी काल में सीमित करें, अन्यथा कफ बढ़ सकता है।

सुपरिणाम

• पंकज मुद्रा के अनेकविध लाभों में शारीरिक दृष्टि से दैहिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। • स्नायुतंत्र शक्तिशाली बनते हैं। • रक्त सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। • बुखार के वक्त इस मुद्रा का तुरन्त असर होता है। • अल्सर जैसे रोग हमेशा के लिए मिट जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• यह मुद्रा स्थायी प्रभाव दिखाने वाले सर्दी-जुकाम जैसे रोगों में भी लाभकारी है।

• प्राकृतिक दृष्टि से इस मुद्रा में अग्नि (अंगूठा) एवं जल तत्त्व (कनिष्ठा) का अपने-अपने सजातीय से संयोग होता है। जिसके प्रभाव स्वरूप शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है। जैसे सूर्योदय होने पर पंकज खिलता है वैसे ही अग्नि तत्त्व का सजातीय अग्नि तत्त्व से मिश्रण होने पर भीतरी हृदय का सूर्य कमल विकसित होता है। जैसे रात्रि में चन्द्र कमल खिलता है वैसे ही जल तत्त्व का जल तत्त्व से मिलन होने पर शुद्ध आत्मा रूपी चन्द्र कमल विकसित होता है।

• इस मुद्रा में अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी ये तीनों अंगुलियाँ अपने-अपने तत्त्व के सामने रहती है जिससे उनके गुणों का परस्पर संक्रमण होता है। इस मुद्रा के अतिशय से दूसरों को प्राण शक्ति प्रदान करने की क्षमता भी विकसित होती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से पंकज मुद्रा में स्थिर होकर कमलाकृति का ध्यान किया जाए तो अनासक्ति का विकास होता है। विचार पवित्र बनते हैं क्योंकि पंकज को पवित्र माना गया है। इस मुद्रा से स्वभाव सौम्य बनता है।[14]

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा टांसिल, गर्दन, लसिका ग्रन्थि आदि से सम्बन्धित रोगों का शमन करती है।

17. लिंग मुद्रा

संस्कृत में धातु का मूल रूप 'लिंग' है और शब्द का मूल रूप 'लिंगम्' है। यहाँ शब्द रूप वाच्य है। तदनुसार लिंग के अनेक अर्थ होते हैं– निशान, चिह्न, प्रतीक, प्रतिमा, शिवलिंग, पुरुष की जननेन्द्रिय, सूक्ष्म शरीर आदि। प्रस्तुत प्रसंग में लिंग का अभिप्राय सूक्ष्म शरीर की सत्ता अथवा पुरुष की जननेन्द्रिय शक्ति से है। पुरुष की विशिष्ट शक्ति जननेन्द्रिय स्थान पर मानी गई है। पुरुष का वीर्य उसी भाग से निःसृत होता है जिसका संरक्षण मर्यादित जीवन या ब्रह्मचर्य पालन द्वारा ही किया जा सकता है। पुरुष के जननेन्द्रिय को लिंग भी कहते हैं। लिंग मुद्रा के अभ्यास से पुरुषत्व जागृत होता है। इसी के साथ पौरूषत्व को टिकाये रखने एवं तज्जनित शक्ति को संग्रहित एवं अभिवर्द्धित करने की भावना बलवती बनती है। लिंग मुद्रा का अन्तरंग प्रयोजन चेतन द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

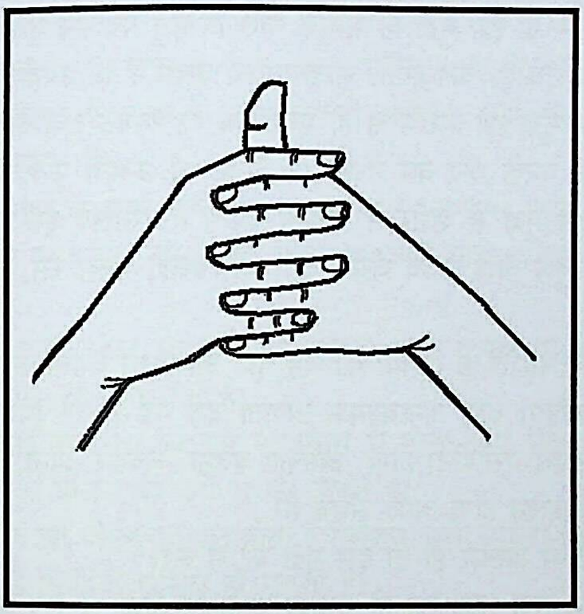

लिंग मुद्रा

की अनन्त शक्तियाँ जो पौरूषत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं किन्तु न्यूनाधिक मात्रा में सुप्त है अथवा कर्ममलों से आवृत्त हैं उन्हें पूर्ण रूप से प्रकट कर देना, अनावृत्त कर देना है।

विधि

लिंग मुद्रा बनाने के लिए मनोनुकूल स्थिति में बैठ जायें। तत्पश्चात दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर एक-दूसरे में फँसाकर हाथ को इस तरह स्थिर करें कि जिससे हथेली भाग पर आपसी हथेलियों का और हथेलियों के पृष्ठ भाग पर अंगुलियों का हल्का दबाव पड़ सकें। इसी क्रम में बायें अंगूठे को सीधा खड़ा रखें एवं दाहिने अंगूठे को बायें अंगूठे के मूल भाग पर किंचित दबाव देते हुए रखना लिंग मुद्रा है।[15]

पहली बार बायें अंगूठे को सीधा रखते हैं तो दूसरी बार की आवृत्ति में दाहिने अंगूठे को सीधा रख सकते हैं इस तरह दोनों प्रकार से लिंग मुद्रा निष्पन्न होती है।[16]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– 1. इस मुद्रा के सम्यक परिणाम हेतु पद्मासन एवं अर्धपद्मासन सर्वोत्तम कहे गये हैं। अपवादतः सुखासन या वज्रासन भी उपयोगी है।

2. इस मुद्रा को प्रारम्भ से ही एक साथ 48 मिनट तक अथवा सोलह-सोलह मिनट करके तीन बार में भी 48 मिनट की अवधि पूर्ण कर सकते हैं।

3. लिंग मुद्रा से शरीर में उष्णता बढ़ती है इसलिए इस मुद्राभ्यास के दौरान शीत गुण वाले पदार्थ जैसे– दूध, घी, छाछ, फल, रस, पानी अधिक मात्रा में लें।

4. पित्त प्रकृति के रोगियों को यह मुद्रा अधिकारी व्यक्ति के निर्देशानुसार ही करनी चाहिए। यदि अनावश्यक उष्णता बढ़ गई हो तो पित्त प्रकोप बढ़ सकता है। उससे एसीडीटी होना, अम्लता बढ़ना, चक्कर आना, गला सूखना या शरीर में जलन होना आदि संभव है।

5. पेट में अल्सर हो तो इस मुद्रा को न करें।

6. जब तक तकलीफ हो अथवा प्रमादादि दोषों से तन-धन को हानि पहुँचती हो, उस समय में ही करें।

7. अन्य संशोधकों के अनुसार लिंग मुद्रा का प्रयोग शरद् ऋतु में अधिक लाभकारी है। उन दिनों शरीर में ताप बढ़ने से कफ के दोष दूर होते हैं, लम्बे समय का जुकाम ठीक हो जाता है, शरीर की अनावश्यक चर्बी जल जाती है जिससे मोटापा कम होता है।

सुपरिणाम

इस मुद्रा में हाथ की आकृति पुरुष लिंग के सदृश दिखाई देती है अतः इसका नाम लिंग मुद्रा है। यह मुद्रा शिवलिंग जैसी भी प्रतीत होती है इसलिए इसे शिवलिंग मुद्रा भी कहा जाता है। प्रस्तुत मुद्रा में अंगूठा पृथक अस्तित्व के रूप में दिखता है इस कारण अंगुष्ठ मुद्रा यह नाम भी प्रसिद्ध है।

- लिंग मुद्रा के प्रभाव से दैहिक स्तर पर शरीर में गर्मी का तापमान बढ़ता है जिससे सर्दी सम्बन्धी सभी तरह के प्रकोप जैसे– खांसी, कफ, जुकाम, सायनस, दमा, अस्थमा, निमोनिया, प्लुरसी, टी.बी. आदि शान्त हो जाते हैं।

जब बहुत अधिक ठंड लग रही हो उस समय इस मुद्रा से तुरन्त राहत मिलती है। शरीर में पसीना आ जाये इतनी गर्माहट पैदा हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• ऋतु परिवर्तन के कारण आने वाली तकलीफें दूर हो जाती है। लिंग मुद्रा के साथ सूर्य मुद्रा करने से पाचन शक्ति सक्रिय बनती है और पाचन तन्त्र भी विशेष शक्तिशाली बनता है। ग्रीष्म ताप से अतिरिक्त चर्बी कम होकर शरीर सप्रमाण बन जाता है।

• इस मुद्रा के साथ सूर्य मुद्रा का अभ्यास करने पर मासिक स्राव की तकलीफें जैसे समय पर मासिक धर्म न आना, अल्प मात्रा में स्राव होना आदि दूर होती हैं।

• यदि नाभि अपने स्थान से हट गई हों तो इस मुद्रा की मदद से वह अपने स्थान पर पुनः आ जाती है।

• आध्यात्मिक स्तर पर इस मुद्राभ्यास से पुरुष और महिलाएँ दोनों ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन आसानी से कर सकते हैं।

• आत्मा का वीर्यगुण प्रकट होता है जिसका सही उपयोग किया जाए तो कई प्रकार की सिद्धियाँ हासिल हो सकती हैं।

• जिस व्यक्ति का पौरुषत्व जागृत रहता है वह किसी भी स्थिति का सहजता से सामना कर सकता है। इस देश में बढ़ रहे अपराध, अत्याचार, अपहरण, बलात्कार जैसी पापवर्द्धक एवं राष्ट्र विनाशकारी वृत्तियों का उन्मूलन कर सकता है।

• एक्यूप्रेशर विज्ञान के अनुसार अंगुलियों का वेणीबंध (एक-दूसरे में ग्रथित) करने से शरीर की अधिकांश शक्तियाँ जागृत होती है तथा हथेली के पिछले हिस्से पर दबाव पड़ने से अनेक रोगों का उपशमन होता है।

• यह मुद्रा गठिया, सुनेपन, अंगुलियों में दर्द, अर्थराइटिस आदि का निवारण कर हड्डियों को मजबूत भी बनाती है।

18. किड़नी-मूत्राशय मुद्रा

शरीर के अंगोपांग की वह आकृति जिसका सीधा असर किडनी एवं मुत्राशय सम्बन्धी स्नायुओं, तंत्रों या नाड़ी संस्थानों पर पड़ता है उसे किड़नी-मूत्राशय मुद्रा कहते हैं।

विधि

किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें। फिर अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों के अग्रभागों को अंगूठे के मूलभाग पर स्थिर करें। फिर इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

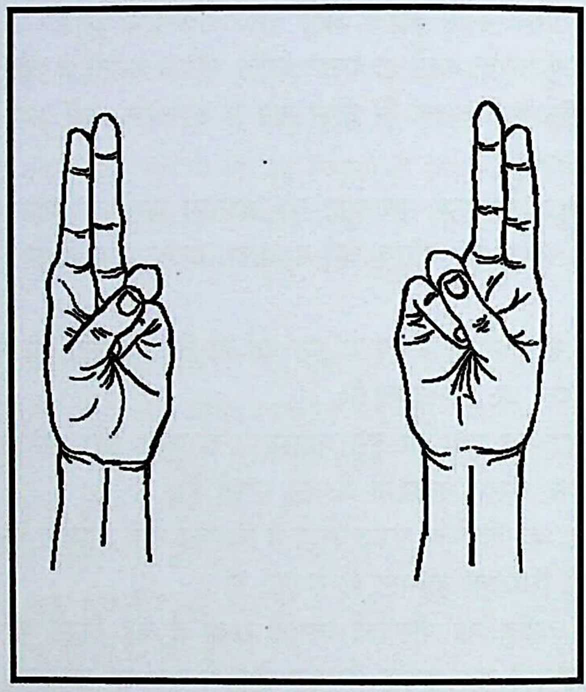

किडनी मूत्राशय मुद्रा

दोनों अंगुलियों पर अंगूठे को हल्का सा दबाव देते हुए रखें तथा शेष दो अंगुलियों को सीधा रखना किड़नी मूत्राशय मुद्रा है।[17]

निर्देश– 1. इस मुद्रा का प्रयोग सुखासन एवं वज्रासन में करना श्रेष्ठ है। 2. इसका प्रारम्भिक अभ्यास 8-10 मिनट का हो। थोड़े दिनों के बाद एक-एक मिनट करके 48 मिनट की अवधि बढ़ा सकते हैं। 3. यह मुद्राभ्यास तज्जन्य रोगों का निवारण न हों तब तक उचित सीमा में ही करें। वैसे इच्छानुसार इसका प्रयोग किसी भी समय कर सकते हैं।

सुपरिणाम

इस मुद्राभ्यास से जलोदर नाशक मुद्रा के सभी लाभ मिलते हैं। एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञों के अनुसार यह मुद्रा कफ निवारण, ऊर्जा संतुलन, श्वास सम्बन्धी रोग, तनाव आदि का निवारण करती है। इसके अतिरिक्त किड़नी एवं मूत्राशय जनित बीमारियों का शमन होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

19. बंधक मुद्रा

संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार बन्ध धातु + ण्वुल प्रत्यय के संयोग से बन्धक शब्द की उत्पत्ति हुई है। यह शब्द विभिन्न अर्थों का बोधक है। बंधक का सामान्य अर्थ है बांधने वाला, पकड़ने वाला। इसके बंध, गांठ, रस्सी, बांध, किनारा, भंग करने वाला, तोड़ने वाला इत्यादि अर्थ भी हैं।[18]

यहाँ उपर्युक्त सभी अर्थों को ग्रहण किया जा सकता है। इस मुद्रा में सामान्यतया अंगूठों एवं अंगुलियों का आकार बंधन के रूप में दिखता है। यह

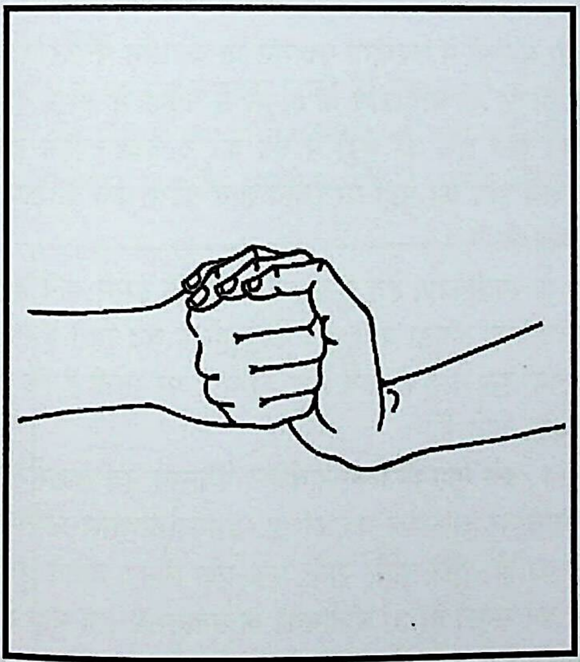

बंधक मुद्रा

हकीकत भी है कि इसमें अंगूठे और अंगुलियाँ परस्पर में एक-दूसरे को बांधते हैं इस तरह बांधने वाला, पकड़ने वाला आदि अर्थ घटित होते हैं। इस शब्द का गूढ़ार्थ यह है कि हमारी आत्मा अनादिकाल से बंधी हुई है, जकड़ी हुई है, संसार दशा में जी रहे प्राणियों को इस सत्यता का बोध हो।

जब हम अपने आप को बंधे हुए देखें तो ही उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जा सकता है। यदि बंधन दिखे ही नहीं तो उससे मुक्ति कैसे संभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो? हम इतने बेहोशी में जी रहे हैं कि हमारे इर्द-गिर्द हजारों तरह के बंधन होने पर भी एक भी बंधन-बंधन रूप प्रतीत नहीं हो रहा। प्रत्युत राग-द्वेष, मोह-माया, झूंठ-कपट जैसे बंधनों में फँसे जा रहे हैं। इस मुद्रा का बाह्य स्वरूप आभ्यन्तर बंधनों से मुक्त होने के लिए प्रेरित करता है, जन्मोजन्म के बंधनों को तोड़ने के लिए प्रशस्त भाव जागृत करता है तथा संसार समुद्र को पार करवाकर मोक्ष का किनारा उपलब्ध करवाता है। इस तरह बंधक मुद्रा के भंग करना, तोड़ना, किनारा इत्यादि अर्थ भी घटित होते हैं।

विधि

अधिकतम मुद्राओं में उपयोगी पद्मासन या वज्रासन में बैठ जायें। तत्पश्चात दाहिने हाथ के अंगूठे को बायें हाथ के अंगूठे से पकड़ में लेकर दाएं और बाएं दोनों अंगूठों को बायें हाथ की मुट्ठी में बंद कर दें तथा दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों को बायें हाथ की मुट्ठी पर (बायें हाथ की तर्जनी के ऊपर) रखने से बंधक मुद्रा बनती है।[18]

इस मुद्रा के स्पष्टीकरण हेतु पुनर्उल्लेख्य है कि इसमें बायें हाथ की पाँचों अंगुलियाँ और दाहिना अंगूठा बायें हाथ की मुट्ठी में बंद रहते हैं तथा दायें हाथ की चारों अंगुलियाँ इस तरह से बायें हाथ की मुट्ठी पर रहती है कि इनके नाखून आसमान की ओर रहते हैं।

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए सर्वश्रेष्ठ पद्मासन एवं वज्रासन है। इनमें से किसी एक आसन पर अधिकार कर लें। 2. इसका अभ्यास प्रारम्भिक दिनों में 10-15 मिनट का हो, फिर शनैः शनैः एक-एक मिनट बढ़ाते हुए 48 मिनट तक का प्रयोग कर सकते हैं। 3. संशोधकों के मतानुसार इस मुद्रा में क्लीं-क्लीं बीजमंत्र का ध्वनि रूप उच्चारण करने से इसका पूरा लाभ मिलता है। 4. इस मुद्रा को सूर्योदय के पहले या सूर्यास्त के बाद करना चाहिए। क्योंकि इससे शरीर की उष्णता बढ़ती है और वह सूर्य के ताप से युक्त होकर नये रोग उत्पन्न कर सकती है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के द्वारा हाथ में रहे हुए उस तरह के बिन्दु प्रभावित होते हैं जिनसे शरीर की उष्ण ऊर्जा में बढ़ोत्तरी होती है। उस ऊर्जा से शरीर को शक्ति मिलती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• इसका नियमित अभ्यास हृदय सम्बन्धी तकलीफों को दूर करता है। हृदय के कई रोग मिट जाते हैं। इस मुद्राभ्यास से उच्च रक्तचाप नियंत्रित होता है।

• बंधक मुद्रा में निपुणता आने पर अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है, चेतन मन में नयी शक्ति के संचार का अहसास होता है एवं निम्नगामी चेतना ऊर्ध्वगामी बनती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा वात दोष का शमन एवं विष का परिहार करती है तथा सर्दी के निवारण में अति उपयोगी है।

20. पुस्तक मुद्रा

पुस्तक ज्ञान का प्रतीक मानी जाती है। पुस्तक किसी भी भाषा या विषय से सम्बन्धित हो, निश्चित रूप से उस विषय का बोध करवाती है। पुस्तक ज्ञान अर्जन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। आधुनिक युग में इसकी आवश्यकता अनिवार्य

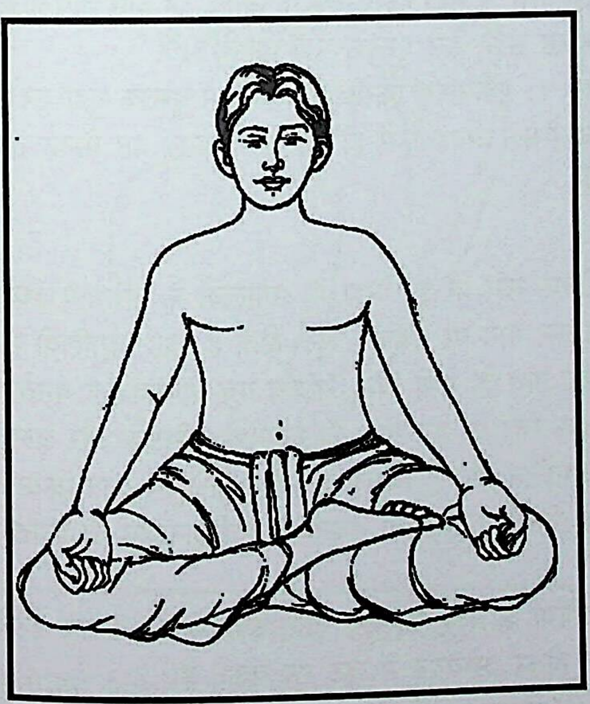

पुस्तक मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप से प्रतीत होती है। प्राचीन काल में विद्यादान की परिपाटी मौखिक थी क्योंकि गुरु एवं शिष्य का क्षयोपशम जबर्दस्त होता था। धीरे-धीरे काल के दुष्प्रभाव से स्मृति मन्द होने लगी तब 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' इस न्यायोक्ति के अनुसार कंठाग्र विद्या को लिपिबद्ध करने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। बुद्धिबल से नये-नये साधनों को अस्तित्व में लाने का प्रयत्न किया गया उनमें पुस्तक जैसे साधन का भी आविर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि इस काल में ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन पुस्तक है।

यहाँ पुस्तक मुद्रा का प्रयोग सद्ज्ञान संवर्द्धन के उद्देश्य से किया जाता है।

विधि

इस मुद्रा की पूर्णता हेतु सुखासन या वज्रासन में बैठें। तत्पश्चात दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रभागों को अंगूठे के नीचे के भाग (शुक्र पर्वत) पर इस तरह रखें कि तर्जनी का अग्रभाग अंगूठे के मूल भाग को स्पर्श कर सकें, शेष तीनों अंगुलियाँ एक दूसरे से सटी हुई तर्जनी के निकट रहें और अंगूठा तर्जनी के मुड़े हुए भाग पर रह सके, इसे पुस्तक मुद्रा कहते हैं।[20]

निर्देश– 1. पूर्वनिर्दिष्ट किसी भी आसन में पुस्तक मुद्रा कर सकते हैं। 2. यह प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था से ही किसी भी समय 48 मिनट तक का किया जा सकता है।

सुपरिणाम

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा में अंगुलियों के अग्रभाग हथेली पर दबने से हथेली के उस भाग पर धड़कन शुरू होती है, वह अंगुलियों में भी महसूस होती है। इससे हाथ के सभी बिन्दु सक्रिय एवं शक्तिवर्द्धक बनते हैं।

• बौद्धिक स्तर पर इस मुद्रा की मदद से मस्तिष्क और ज्ञानतंतु के सभी मुख्य बिन्दु प्रभावित होते हैं जिससे मस्तिष्क के सूक्ष्म कोष क्रियावंत हो उठते हैं। परिणामत: चित्त की एकाग्रता सधती है तथा ज्ञानार्जन की क्षमता का विकास होता है।

• विद्यार्थियों के लिए यह मुद्रा अति उपयोगी है, क्योंकि इसके प्रभाव से वे एकाग्रचित्त होकर अध्ययन में जुटे रह सकते हैं।

• कोई भी पुस्तक जल्दी से समझ न आ रही हो तो पुस्तक मुद्रा करने के पश्चात उसे तुरंत समझ आ सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक मुद्रा से निम्न शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे अध्याय-1 के अनुसार अन्य कई फायदे होते हैं–

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पैराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** कान, नाक, गला, मुँह, स्वरयंत्र, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

21. प्रज्वलिनी मुद्रा

संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रज्वलिनी शब्द प्र उपसर्ग, ज्वल् धातु, ल्युट् + इनि प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है। प्रज्वलिनी का सामान्य अर्थ है– विशेष रूप से, प्रकर्ष रूप से जलने वाला।

प्रज्वलिनी मुद्रा

प्रज्वलिनी का सांकेतिक अर्थ है– ऊपर उठना। जिस तरह ज्वलनशील स्वभाववाली अग्नि की लपटें सदैव ऊपर की ओर उठती हैं उसी तरह इस मुद्रा का अभ्यास आत्मिक भावधारा को ऊर्ध्वाभिमुखी बनाता है। प्रज्वलिनी शब्द का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतीकात्मक अर्थ है– उष्णता, तेज, प्रकाश, जलाना, चमकना इत्यादि। जैसे अग्नि उष्णता बढ़ाती है, तेज गुण प्रधान है, चहुँ ओर प्रकाश फैलाती है, निकटवर्ती पदार्थों को जला डालती है, पीतवर्णी होने से स्वर्ण के समान चमकती है वैसे ही इस मुद्रा के माध्यम से प्रमाद ग्रसित चेतना सक्रिय बनती है, आत्म गुणों का तेज बढ़ता है, अनन्त ज्ञान आदि गुणों से प्रकाशित होती है, प्रशस्त भावनाओं के वेग से पूर्व संचित पापकर्म जल (नष्ट हो) जाते हैं और अंततः वह आत्मा तपे हुए कुन्दन के समान निर्मल बन जाती है। इस तरह प्रज्वलिनी मुद्रा का मुख्य हेतु पश्चात्ताप की प्रज्वलित अग्नि में समग्र पापमलों को भस्मीभूत करके आत्म धर्म से स्व-पर को प्रकाशित करना है।

विधि

इस मुद्रा के लिए सुखासन में बैठ जायें। तत्पश्चात बायें हाथ की कोहनी के ऊपर के हिस्से पर दाहिने हाथ की कोहनी रखकर, दायें हाथ को इस तरह घुमाकर रखें कि दोनों हथेलियाँ एक-दूसरे से संपृक्त हो जायें और दोनों अंगूठे नाक के सामने रहें। फिर दृष्टि को दोनों अंगूठों पर एकाग्र करने से प्रज्वलिनी मुद्रा बनती है।

निर्देश– 1. इस मुद्रा हेतु सुखासन या समपाद आसन उपयोगी है। 2. इस मुद्रा को प्रारम्भ में 8-10 मिनट ही करें, फिर धीरे-धीरे 48 मिनट तक का अभ्यास कर सकते हैं। 3. इस मुद्रा का प्रयोग शरद् ऋतु में अधिक महत्त्व रखता है क्योंकि ग्रीष्म काल में ज्यादा उष्णता बढ़ सकती है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा में हाथों की आकृति गरूड़ पक्षी की भाँति बनती है इसलिए इसे गरूड़ मुद्रा भी कहते हैं। आचारदिनकर में इस मुद्रा का नाम गरूड़ मुद्रा बताया गया है। गरुड़ मुद्रा इस नाम के पीछे मूल तथ्य यह है कि गरूड़ की दृष्टि तीक्ष्ण होती है। इस मुद्राभ्यास से भी आँखों की रोशनी बढ़ती है।

• इस मुद्रा की नियमित साधना चित्त की स्थिरता को बढ़ाती है, सम्यकज्ञान को पुष्ट करती है और मेधाशक्ति विकसित करती है।

• अध्ययन की दृष्टि से यह मुद्रा विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

• यह मुद्रा निम्न शक्ति केन्द्रों को प्रभावित कर अध्याय-1 के अनुसार कई तरह के लाभ देती हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्र– स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, थायमस एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य, आनंद एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचरण तंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

22. हार्ट मुद्रा

हार्ट का हिन्दी रूप हृदय है। यह मुद्रा हृदय की प्रतीक है। यह मुद्रा हृदय सम्बन्धी रोगों के निवारण एवं शुभ क्रियाओं में हृदय को जोड़े हुए रख सकें, इस उद्देश्य से की जाती है। हृदय शरीर का प्रमुख अंग है। यदि हृदय स्वस्थ है तो शरीर निरोग रहता है साथ ही मन भी संतुलित रहता है। हमारी चित्तवृत्तियों का सीधा असर हृदय पर पड़ता है। जैसे कि क्रोध के क्षणों में वह धड़कने

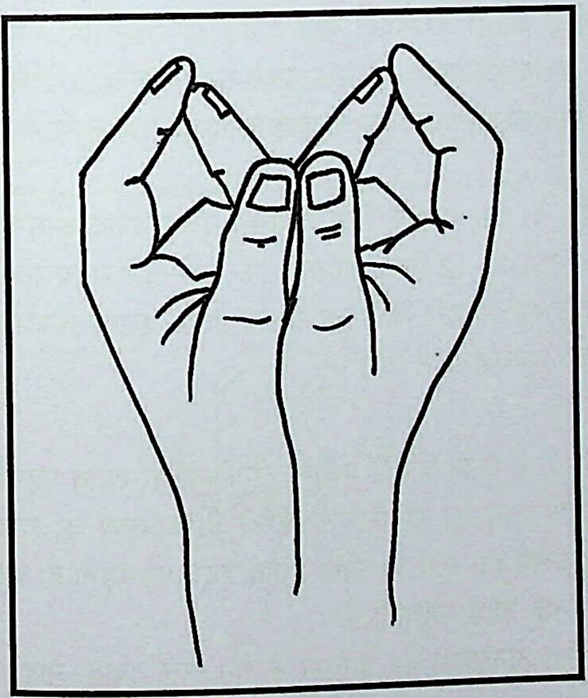

हार्ट मुद्रा

लगता है, भय की स्थिति में काँपने लगता है, खुशियों के पलों में फूलता है, ध्यान की दशा में शान्त रहता है इस तरह हमारी समस्त प्रवृत्तियों का उस पर प्रभाव पड़ता है अतः हमें इस तत्त्व के प्रति जागरूक रहना चाहिए। इस मुद्रा का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्देश्य हृदय में होने वाले प्रकंपनों का सजगता पूर्वक संवेदन करना और उसके प्रति सचेत रहना है ताकि हमारा बाह्य (भौतिक-शारीरिक) एवं आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) जीवन क्षत-विक्षत न हों।

विधि

किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें। तदनन्तर दोनों हाथों की मध्यमा अंगुलियों को मोड़कर एक-दूसरे से स्पर्शित करें। फिर दोनों हाथ की तर्जनी अंगुलियों के अग्रभागों को, अनामिका अंगुलियों के अग्रभागों को एवं कनिष्ठिका अंगुलियों के अग्रभागों को परस्पर मिलायें।

दोनों अंगूठों को एक-दूसरे के समीप रखें। तत्पश्चात पहले धीरे-धीरे तर्जनी के अग्रभागों को अलग करें, फिर कनिष्ठिका के अग्रभागों को अलग करें, फिर दोनों अंगूठों को पृथक करें।

अनामिका के अग्रभागों को एक-दूसरे से सम्पृक्त ही रखें तथा मोड़ी हुई मध्यमा को भी हल्के से दबाव का अनुभव करते हुए एक-दूसरे से सटाये रखना हार्ट मुद्रा है।[21]

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए वज्रासन एवं समपाद आसन श्रेष्ठ है। 2. यह मुद्रा प्रारम्भ में 10-12 मिनट ही करें, फिर धीरे-धीरे समय सीमा बढ़ाते हुए 48 मिनट तक का अभ्यास किया जा सकता है। 3. इसका अभ्यास थोड़ा कष्ट साध्य है अत: जल्दबाजी न करें।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा में मुख्य रूप से मध्यमा अंगुलियों पर दबाव पड़ता है। मध्यमा अंगुली आकाश तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। आकाश का घनिष्ठ सम्बन्ध हृदय से है इसलिए इस मुद्रा का सीधा प्रभाव हृदय पर पड़ता है। हृदय की कोई भी बीमारी में यह लाभ पहुँचाती है।

• यह मुद्रा एन्जाईना पेन, हायपर टेन्शन, रक्त दबाव, नाड़ी संस्थान की अस्त-व्यस्तता तथा बायपास करने के पहले और बाद में भी फायदा करती है।

• यह मुद्रा अध्यात्म दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यदि इस मुद्रा को शांत वातावरण में, स्थिरतापूर्वक किया जाये तो अंगुलियों से हृदय तक के प्रकंपनों का अनुभव होता है। इससे मानसिक एकाग्रता में आशातीत सफलता मिलती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• हृदय के साथ आत्म विचारों का तादात्म्य बनता है, स्वयं के प्रति स्वयं को टिकाये रखने की भूमिका निर्मित होती है और ध्यान क्षेत्र में रूचि बढ़ती है।

इस मुद्रा के द्वारा निम्न ग्रन्थियों आदि पर दबाव पड़ने से अन्य भी कई फायदे होते हैं-

चक्र– मणिपुर, विशुद्धि एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, विशुद्धि एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, स्वरतंत्र, नाक, कान, गला, हृदय, फेफड़ें, मुख आदि।

23. अनुशासन मुद्रा

अनुशासन वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विकास का शक्तिशाली शब्द है। प्रत्येक गतिविधि की सफलता का आधार अनुशासन बद्धता है। अनुशासन को साधना का प्राण भी कहा गया है। अनुशासन के बिना साधना

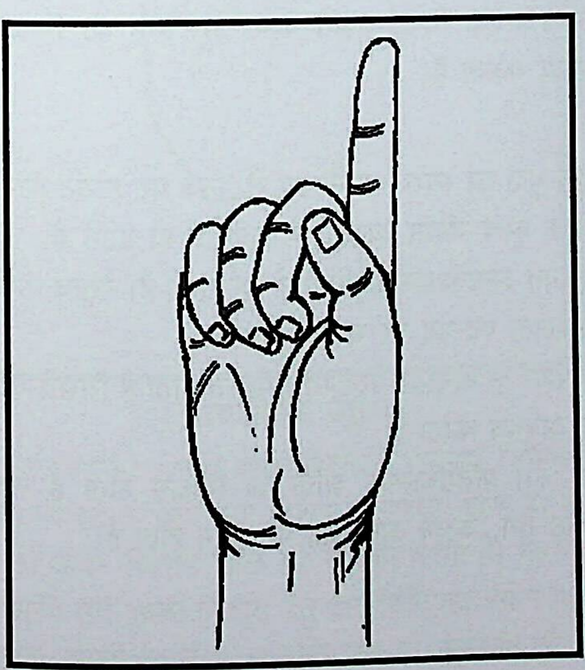

अनुशासन मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सफल नहीं होती। जहाँ अनुशासन हो, वहाँ संयम, मर्यादा, विवेक, जागरूकता, विनम्रता इत्यादि अनेक गुणों का सहज रूप से आगमन होता है। इस तरह अनुशासन का प्रयोग व्यक्ति को अत्यन्त ऊँचाईयों की ओर अग्रसर करता है। अनुशासन मुद्रा का उद्देश्य जीवन जगत में अपूर्व शान्ति का साम्राज्य फैलाते हुए अध्यात्म जगत के अन्तिम छोर का स्पर्श करना है।

विधि

इस मुद्रा के लिए आरामदायक आसन में बैठ जायें। फिर तर्जनी अंगुली को एकदम सीधा रखते हुए शेष तीन अंगुलियों (कनिष्ठा, अनामिका एवं मध्यमा) को मुट्ठी के रूप में मोड़कर अंगुठे से योजित करना अनुशासन मुद्रा है।

निर्देश– 1. अनुशासन मुद्रा की सफलता के लिए पद्मासन या सुखासन श्रेष्ठ आसन है। 2. इस मुद्रा का अभ्यास यथेच्छा किसी भी समय किया जा सकता है लेकिन एक साथ दीर्घ अवधि तक नहीं कर सकते। पूज्य मुनि श्री किशनलालजी म. सा. के निर्देशानुसार प्रारम्भ में आठ मिनट, फिर एक माह तक प्रतिदिन एक-एक मिनट बढ़ाते जायें। इस तरह 48 मिनट पर्यन्त यह प्रयोग किया जा सकता है।

सुपरिणाम

- प्रस्तुत मुद्रा का स्मरण करने मात्र से 'निज पर शासन फिर अनुशासन' जैसे सांस्कृतिक मूल्य जीवन व्यवहार में चरितार्थ हो उठते हैं।
- मनोजगत अनावश्यक प्रवृत्तियों से दूर रहता है। नेतृत्व करने की क्षमता बढ़ती है। सफलता पद-पद पर चरण चूमती है।
- एक्यूप्रेशर के अनुसार मेरुदण्ड प्रभावित होता है जिससे व्यक्ति स्वयं में पौरूषत्व का अनुभव करता है।
- इससे रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है तथा शारीरिक एलर्जी, लैंगिक रोग, जलन आदि का भी शमन होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

24. आशीर्वाद मुद्रा

संस्कृत के आशीस् शब्द से आशीर्वाद बना है। इसमें 'आ' उपसर्ग + 'शास्' धातु + 'क्विप्' प्रत्यय का संयोग है। आ उपसर्ग समग्रता सूचक है और शास् धातु शासन अर्थक है। मन को समग्र रूप से अनुशासित करते हुए हृदय के शुभ भावों को अभिव्यंजित करना आशीर्वाद है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस मुद्रा के द्वारा किसी के लिए मंगल कामना अथवा सद्भावना अभिव्यक्त की जाती है उसे आशीर्वाद मुद्रा कहते हैं। आशीर्वाद का प्रतीकात्मक अर्थ–

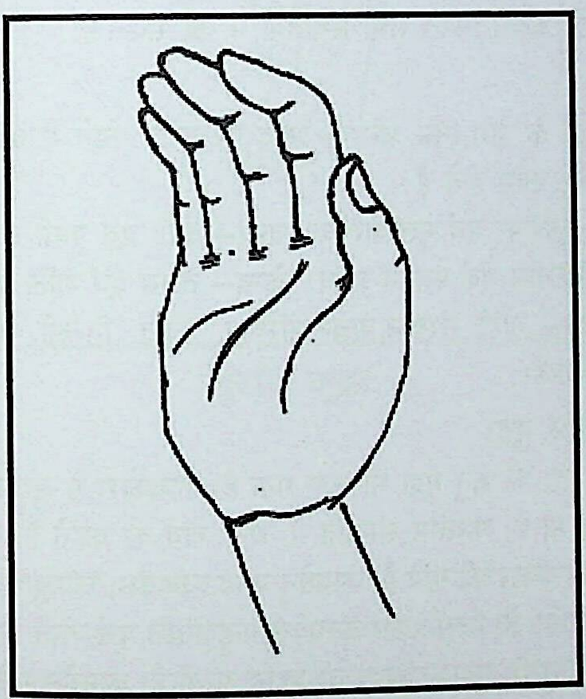

आशीर्वाद मुद्रा

मंगलकारी, कल्याणकारी अथवा आत्म हितकारी भावनाएँ जिसके लिए निःसृत हो रही है उस व्यक्ति के लिए मुद्रा विशेष का प्रयोग करना है। सांकेतिक दृष्टि से इस मुद्रा का अर्थ– विशिष्ट शक्ति को संप्रेषित करना है। भारतीय परम्परा में चिरकालिक शांति एवं आत्म विकास हेतु आशीर्वाद का प्रयोग महत्त्वपूर्ण माना गया है। वस्तुतः आशीर्वाद मुद्रा का प्रयोग स्व-पर कल्याण की भावाभिव्यक्ति के रूप में किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि

आशीर्वाद मुद्रा दो प्रकार से होती है। एक आशीर्वाद दिखाते हुए एवं दूसरा आशीर्वाद देते हुए। यहाँ आशीर्वाद देने से अभिप्रेत है। हाथ की सभी अंगुलियों को बिल्कुल सीधी और एक-दूसरे से सटाते हुए रखें, अंगूठे को भी तर्जनी के निकट स्पर्शित करते हुए रखें। फिर दोनों हाथों को आशीर्वाद की भावना से किसी के मस्तक पर रखना आशीर्वाद मुद्रा है।

निर्देश– यह मुद्रा बिना किसी प्रयास के सहज रूप से बनती है। इस मुद्रा को खड़े-बैठे, चलते-फिरते सभी स्थितियों में कर सकते हैं।

सुपरिणाम

इस मुद्रा के द्वारा निम्न ग्रन्थियों आदि पर दबाव पड़ने से अध्याय-1 के अनुसार अनेक लाभ होते हैं–

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– नाड़ी संस्थान,पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, आँतें, पाँव, गुर्दे एवं मेरूदण्ड।

25.1. सुरभि मुद्रा

सुरभि मुद्रा को धेनु मुद्रा भी कहा गया है। शब्दकोश में सुरभि का दूसरा नाम कामधेनु भी है। भारतीय संस्कृति में 'धेनु' गाय को कहते हैं। कामधेनु से तात्पर्य विशिष्ट प्रकार की गाय है। कामधेनु शब्द कल्पवृक्ष, कामकुंभ, चिंतामणि रत्न के समानार्थक है। जिस प्रकार कल्पवृक्ष मनोवांछित पूर्ण करते हैं उसी प्रकार कामधेनु मुद्रा (सुरभि मुद्रा) इच्छित वर प्रदान करती है। कामधेनु गाय की भाँति यह मुद्रा सभी प्रकार की सफलता हेतु सर्वोत्तम मुद्रा है।

सुरभि मुद्रा बनाते समय अंगुलियों का आकार गाय के थनों जैसा हो जाता है इसीलिए इसका नाम सुरभि मुद्रा है। गाय के थनों से दूध मिलता है और दूध से शरीर पुष्ट होता है वैसे ही इस मुद्रा से शरीर संतुलित और पुष्ट होता है। इस प्रकार सुरभि मुद्रा अपने नामानुरूप गुण के अनुसार बाह्य (शारीरिक-भौतिक) एवं आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) समृद्धि की प्राप्ति के उद्देश्य से की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

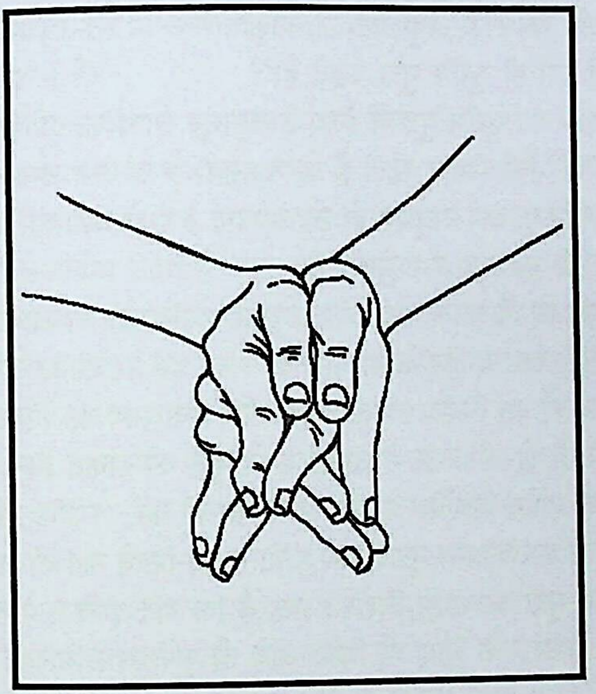

सुरभि मुद्रा

विधि

ध्यान उपयोगी किसी भी अनुकूल आसन में बैठ जायें। तदनन्तर नमस्कार मुद्रा की भाँति दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रिम पोरों को परस्पर मिलाएं। फिर बाएं हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को दाहिने हाथ की मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श कराएं तथा दाहिने हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को बाएं हाथ की मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श करवाएं।

इसी तरह बाएं हाथ की अनामिका के अग्रभाग को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से मिलाएं तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग को बाएं हाथ की अनामिका के अग्रभाग से मिलाएं।

दोनों अंगूठे एक-दूसरे के आसपास स्वतन्त्र रहें। सभी अंगुलियाँ एक-दूसरे के सम्मुख मिलती हुई रहें। उपर्युक्त विधि से हाथ की मुद्रा बनाकर अंगुलियों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीचे की ओर करने से अंगुलियों की आकृति गाय के स्तनों (थनों) के सदृश हो जाती है इसे ही सुरभि मुद्रा कहते हैं।[22]

निर्देश– 1. सुरभि मुद्रा के लिए उत्कटासन (गाय का दूध निकालते वक्त हाथ-पाँवों की जैसी स्थिति रहती है वह आसन) श्रेष्ठ माना गया है। यदि इस आसन में कठिनाई का अनुभव हो तो अपवाद रूप से वज्रासन, सुखासन या पद्मासन में भी यह मुद्रा कर सकते हैं।

2. मुनि श्री किशनलालजी के मतानुसार सुरभि मुद्रा का अभ्यास 8 मिनट से प्रारम्भ करें। एक सप्ताह के अभ्यास के पश्चात इसे 16 मिनट करें। धीरे-धीरे इस अभ्यास को 48 मिनट पर्यन्त बढ़ाएँ। यदि एक साथ 48 मिनट का प्रयोग न कर सकें तो दो-तीन बार में उतना समय पूर्ण कर सकते हैं।

3. यह प्रयोग निर्धारित आसन में बैठकर ही करें, क्योंकि यह मुद्रा कुछ कठिन होने के कारण अन्य मुद्राओं की भाँति चलते-फिरते नहीं की जा सकती है।

4. इस मुद्रा की खास विशेषता यह है कि यदि इसका अभ्यास सुविधि पूर्वक कुछ सैकण्ड के लिए भी किया जाये तो पूर्ण लाभ मिलता है।

सुपरिणाम

यह एक रहस्यमयी मुद्रा है। इसके खास तौर पर निम्न लाभ देखे जाते हैं–

- इस सुरभि मुद्रा में वायु तत्त्व का आकाश तत्त्व के साथ संयोग होता है तथा पृथ्वी तत्त्व का जल तत्त्व के साथ संयोग होता है। वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व के सम्मिलन से ब्रह्माण्ड चक्र स्थिर होता है। ब्रह्माण्ड चक्र की भाँति शरीर का नाभि चक्र स्वस्थ और स्थिर रहता है। नाभि केन्द्र हमारी स्वस्थता का मूल आधार है। नाभि केन्द्र की गड़बड़ी से ही शरीर रोग ग्रस्त बनता है। इस मुद्रा प्रभाव से जब नाभि केन्द्र स्वस्थ रहता है तब शरीर सम्बन्धी एवं उदर सम्बन्धी रोग भी शान्त हो जाते हैं।

- नाभि केन्द्र के संतुलन से पाचनतंत्र भी स्वस्थ रहता है। नाभि केन्द्र की स्वस्थता से मूत्र रोगों का भी शमन होता है। नाभि केन्द्र सुनियोजित रहने से ग्रन्थि तंत्र के स्राव संतुलित रहते हैं।

- जल तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व के मिलन से सृजन शक्ति अर्थात बौद्धिक क्षमता विकसित होती है। इस मुद्रा से वात-पित्त और कफ की प्रकृति समभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में रहती है। सारतः एक साधारण व्यक्ति इसका निरंतर प्रयोग करें तो वह हरदम स्वस्थ बना रहता है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से इस मुद्रा के द्वारा चित्त की निर्मलता बढ़ती है। योग साधना में सहयोग मिलता है। ध्यान करते वक्त यह मुद्रा करने से ध्यानाभ्यासी को ब्रह्मनाद (दिव्यनाद) सुनाई देता है। इस दिव्यनाद में मग्न हुआ व्यक्ति दुनिया की हलचलों से सर्वथा रहित हो जाता है। इस मुद्रा के साथ शुभ संकल्प किया जाये तो वह संकल्प दृढ़ बनकर इच्छित फल प्रदान करता है। जो साधक अपनी साधना की पराकाष्ठा पर है, उसके लिए भी यह मुद्रा आवश्यक है ताकि वह अपनी साधना के अन्य रहस्यों को भी प्राप्त कर सके।

• यह मुद्रा उच्चकोटि के योगी एवं गृहस्थ साधकों के लिए भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है अतः दोनों के लिए लाभप्रद है। अन्य प्रकार की उच्चकोटि की तांत्रिक साधनाओं के लिए भी इस मुद्रा का अभ्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह मुद्रा योग मार्ग में तीव्र गति से आगे बढ़ने में अद्भुत प्रकार का सहयोग करती है, इससे अनगिनत रहस्यों की अभिव्यक्ति होती है। ऊँची स्थिति को प्राप्त साधकों के लिए भी यह मुद्रा अग्रसर होने में वरदान सिद्ध होती है। इस मुद्रा के अनुसंधान से पाया गया है कि यह मुद्रा योगी और भोगी दोनों के लिए विशेष कार्य करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इसके निरंतर अभ्यास से साधना की चरम सीमा तक पहुँचा जा सकता है।

• एक्यूप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार इस मुद्रा के दाब केन्द्र बिन्दु साइनस सम्बन्धी रोगों का उपचार करते हैं। इस मुद्रा से कर्ण एवं आँख सम्बन्धी बिन्दुओं पर भी दबाव पड़ता है इससे तत्सम्बन्धी तकलीफों में भी राहत मिलती है। जैन एवं हिन्दू द्विविध परम्पराओं में इसका प्रयोग प्रमुखतः धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर किया जाता है।

इस सुरभि मुद्रा में अंगूठे (अग्नि तत्त्व) को अलग-अलग स्थान पर रखने से अनेक प्रकार बन जाते हैं। तदनुसार उनके परिणाम भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

25.2.जल सुरभि मुद्रा

दोनों हाथों की कनिष्ठिका अंगुली जल तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस मुद्रा में अंगूठे (अग्नि तत्त्व) को कनिष्ठिका अंगुली के मूल भाग से योजित किया जाता है इसलिए इस मुद्रा को जल सुरभि मुद्रा कहते हैं।

विधि

सुखासन या किसी भी ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर पूर्ववत सुरभि मुद्रा बनाएँ। फिर दोनों अंगूठों के अग्रभागों को कनिष्ठिका अंगुलियों के मूलभाग पर स्पर्शित करने से जल सुरभि मुद्रा बनती है।

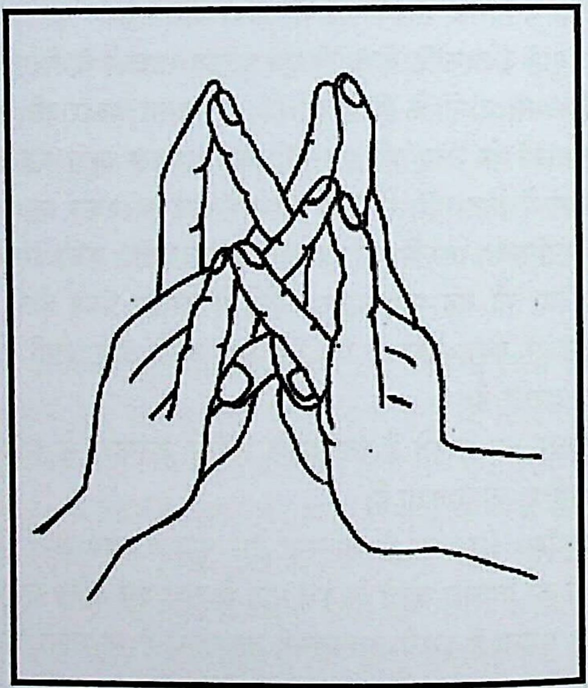

जल सुरभि मुद्रा

सुपरिणाम

जल सुरभि मुद्रा में अग्नि तत्त्व और जल तत्त्व का संयोजन होता है। इससे जल के बढ़ने या कमी होने के कारण किसी तरह का विकार उत्पन्न हुआ हो तो शान्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• अग्नि तत्त्व का जल तत्त्व से संस्पर्श होने पर पित्त सम्बन्धी कठिनाईयाँ एवं रोग विश्राम ले लेते हैं। पित्त प्रकृति वालों के लिए यह मुद्रा अत्यन्त लाभदायी है।

• इस मुद्रा से किडनी या मूत्र सम्बन्धी दोषों का भी परिहार होता है।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार अंगूठे द्वारा कनिष्ठिका पर दाब पड़ने से शक्ति का संतुलन होता है, मूर्च्छा छूटती है, बेहोशी दूर होती है। आकस्मिक दुर्घटना के वक्त चमत्कारी फायदे दिखाती हैं।

25.3. पृथ्वी सुरभि मुद्रा

दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियाँ पृथ्वी तत्त्व का प्रतिनिधि है। इस मुद्रा में द्वयांगुष्ठों (अग्नि तत्त्व) को अनामिका के मूल भाग से संस्पर्शित किया जाता है अत: इसे पृथ्वी सुरभि मुद्रा कहते हैं।

विधि

पूर्व निर्देश के अनुसार अनुकूल स्थिति में बैठ जायें। तदनन्तर पूर्ववत सुरभि मुद्रा बनाकर दोनों अंगूठों के अग्रभाग को दोनों अनामिका अंगुलियों के मूल भाग पर लगाने से पृथ्वी सुरभि मुद्रा बनती है।

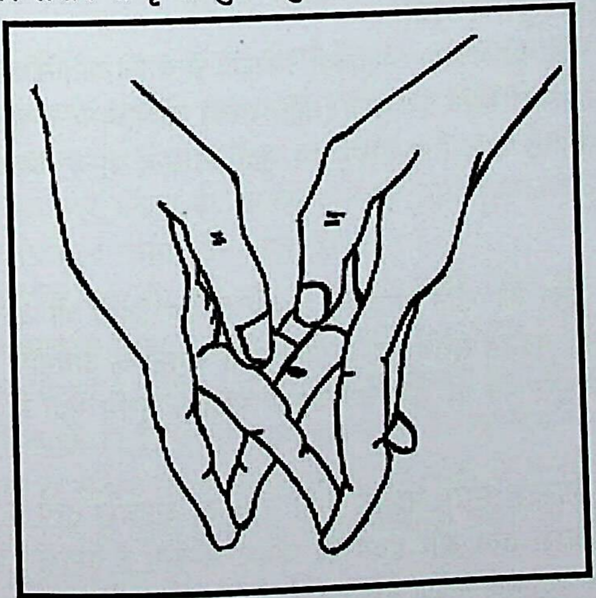

पृथ्वी सुरभि मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपरिणाम

इस पृथ्वी सुरभि मुद्रा में अग्नि तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व का संयोजन होने से पृथ्वी तत्त्व के बढ़ने या कमी के कारण उत्पन्न रोगों में राहत मिलती है।

• इस मुद्रा के प्रयोग से उदर सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। पाचन क्रिया सुव्यवस्थित रूप से संचालित रहती है। इससे कफ जनित बीमारियों का भी निवारण होता है अतः कफ प्रकृति वालों के लिए उपयोगी मुद्रा है।

• साधनात्मक स्तर पर इस मुद्रा से शरीर की जड़ता नष्ट होती है, भारीपन दूर होता है और शरीर बलिष्ठ बनता है। पृथ्वी सुरभि मुद्रा का नियमित प्रयोग करने से षट्चक्र के द्वार खुलते हैं, साधक की सुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती है और वह धीरे-धीरे साधना के चरम सोपानों का स्पर्श करता हुआ साध्य पद को उपलब्ध कर लेता है।

• किन्हीं के अभिमत से यह मुद्रा करने के तुरंत बाद ज्ञान मुद्रा करनी चाहिए, जिससे उत्पन्न हुई शक्ति ऊर्ध्वगामी बन सकें।

• एक्युप्रेशर के मतानुसार यह मुद्रा करने से योनि सम्बन्धी रोग, सर्दी आदि का निवारण होता है तथा काम वासनाएँ नियंत्रित होती है।

25.4. शून्य सुरभि मुद्रा

दोनों हाथों की मध्यमा अंगुलियाँ आकाश तत्त्व की प्रतिनिधित्व करती है। इस मुद्रा को बनाते समय द्वयांगुष्ठों (अग्नि तत्त्व) को मध्यमा अंगुलियों के मूल से स्पर्श करवाया जाता है इसलिए इस मुद्रा का नाम शून्य (आकाश) सुरभि मुद्रा है।

विधि

सुरभि मुद्रा की भाँति सुखासन अथवा निर्दिष्ट किसी भी आसन में बैठ जायें। तदनन्तर पूर्ववत सुरभि मुद्रा बनाकर दोनों अंगूठों के अग्रभागों को मध्यमा अंगुलियों के मूल पर्व पर संयोजित करना आकाश सुरभि मुद्रा है।

सुपरिणाम

• इस आकाश सुरभि मुद्रा में अग्नि तत्त्व का आकाश तत्त्व के साथ योग बनता है। आकाश तत्त्व और हृदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिए प्रस्तुत मुद्रा से हृदय तन्त्र सर्वाधिक रूपेण प्रभावित होता है। तत्फलस्वरूप भावधारा निर्मल होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

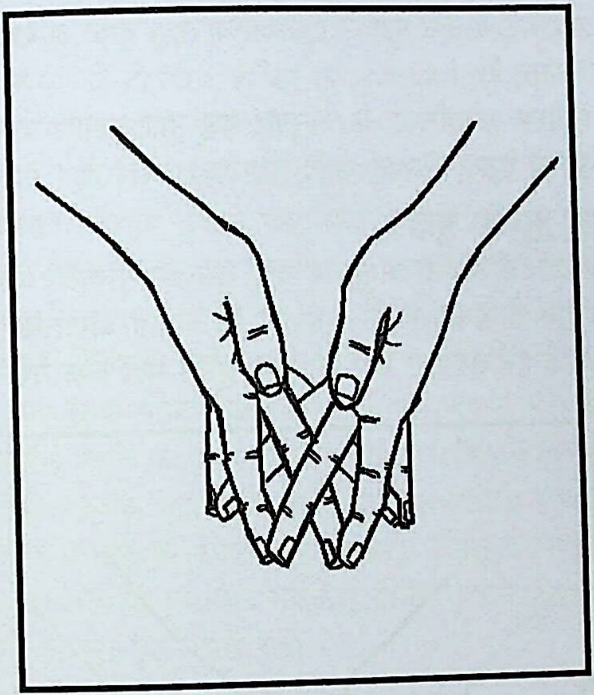

शून्य सुरभि मुद्रा

बाह्य प्रपंचों से मुक्त होकर अंतर्मुखी बनने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है। अनहद आनंद की अनुभूति एवं अपूर्व शान्ति का विकास होता है। नियमित अभ्यास से साधक अपनी आत्मसंपदा से परिचित हो सकता है और गुण समृद्धि को सहस्त्रगुणा बढ़ा सकता है। सम्यक अभ्यासी योगी पुरुष ब्रह्मनाद का स्पष्ट अनुभव करता हुआ उसमें लीन रहता है।

• शारीरिक स्तर पर इस मुद्रा से कान सम्बन्धी किसी भी दर्द में राहत मिलती है। आकाश शून्य एवं शब्द गुण वाला है इसलिए इस मुद्रा से शब्दों में सामंजस्य बैठता है अर्थात वक्तृत्व कला का विकास होता है। • इस मुद्रा के अभ्यास से व्यक्ति के शरीर का शून्य बढ़ जाता है। वह विश्व के कोलाहल से दूर हो जाता है। साधक को अनेक प्रकार के नाद स्वतः ही सुनाई देने लगते हैं। कर्ण इन्द्रिय शून्य हो जाती हैं फलतः व्यक्ति बहरा हो सकता है। यह योगी पुरुषों के लिए चमत्कारी मुद्रा है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यह मुद्रा आत्म साधना की दृष्टि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःसन्देह प्रायोगिक है। इस मुद्रा के द्वारा आध्यात्मिक जगत अधिक परिपुष्ट एवं शक्तिशाली बनता है।

- एक्युप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार यह मुद्रा बुखार, श्वास सम्बन्धी रोग, हाथ-पैर में ऐंठन, सिरदर्द आदि में फायदा करती है।

25.5. वायु सुरभि मुद्रा

दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियाँ वायु तत्त्व का संचालन करती हैं। इस मुद्रा के माध्यम से द्वयांगुष्ठों के अग्रभागों को तर्जनी अंगुलियों के मूल पर लगाया जाता है इसलिए इस मुद्रा को वायु सुरभि मुद्रा कहा गया है।

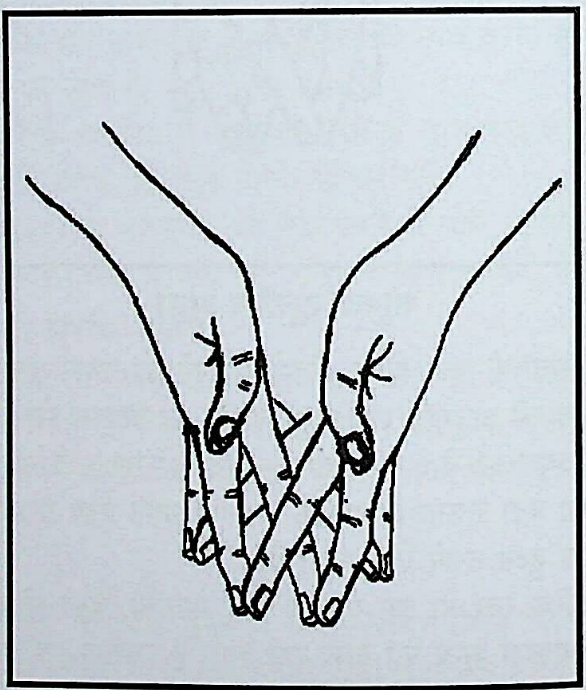

वायु सुरभि मुद्रा

विधि

सुरभि मुद्रा के लिए सुखासन या वज्रासन में बैठ जायें। तत्पश्चात पूर्ववत सुरभि मुद्रा बनाकर दोनों अंगूठों के अग्रभागों को दोनों तर्जनी अंगुलियों के मूल स्थान पर योजित करने से वायु सुरभि मुद्रा बनती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– 1. इस मुद्रा के अभ्यास में समय सीमा का पूरा ख्याल रखना चाहिए। प्रारम्भ में दो-दो मिनट ही करें तत्पश्चात स्वयं की प्रकृति और परिणाम के अनुसार समय सीमा में वृद्धि करें।

2. सुरभि मुद्रा के अनेक प्रकार हैं। सभी के प्रयोग समझ पूर्वक करें, अन्यथा विपरीत परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं जैसे कि वायु सुरभि मुद्रा का अधिक प्रयोग करने पर वायु का शमन तो हो जाता है लेकिन उष्णता बढ़ जाती है अथवा वात के रोग दूर हों तो पेट या मूत्र रोग की पीड़ा बढ़ जाती है। जल सुरभि मुद्रा का अधिकतम प्रयोग करने पर जल तत्त्व के रोग तो शान्त हो जाते हैं किन्तु पाचन क्रिया गड़बड़ा जाती है। इसलिए प्रयोग करने वाले साधक को अपनी शारीरिक प्रकृति का अवश्य ख्याल रखना चाहिए। पुनश्च समझें कि कफ प्रकृति से ग्रसित व्यक्ति यदि पृथ्वी सुरभि मुद्रा का सामान्य रूप से प्रयोग करें तो अग्नि तत्त्व से कफ का उपशमन हो जायेगा, किन्तु समय सीमा का ध्यान न रखें तो जल तत्त्व की मात्रा घट सकती है इसलिए शरीर की प्रकृति एवं मुद्रा के परिणामों का पूरा-पूरा ख्याल रखें।

सुपरिणाम

• इस वायु सुरभि मुद्रा में अग्नि और वायु तत्त्व का सम्मिश्रण होने से वायु तत्त्व सुनियोजित ढंग से कार्य करने लगता है, जिसके फलस्वरूप वायु जनित समग्र विकृतियों का निवारण होता है, वायु (गैस) के दर्द ठीक हो जाते हैं। डॉक्टर परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि जिन वायु विकारों का पता नहीं चलता वे इस वायु मुद्रा के प्रयोग से तत्क्षण ठीक होने की स्थिति में आ जाते हैं। व्यक्ति शान्ति का अनुभव करने लगता है। गैस जनित दर्दों से पीड़ित व्यक्तियों को यह मुद्रा नियम से करनी चाहिए।

• मानसिक दृष्टि से ऐन्द्रिक चंचलता दूर होकर एकाग्रता का विकास होता है। अध्यात्म स्तर पर जाप साधकों एवं योगी पुरुषों के लिए यह महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा प्रभाव से आलस्य, निद्रा, निष्क्रियता, निठल्लापन जैसी वृत्तियाँ हावी नहीं होती। सत्कर्म के प्रति भावों का उल्लास निरन्तर प्रवर्द्धित रहता है।

• एक्युप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा लीवर सम्बन्धी बीमारियाँ, मासिक स्राव, हेमरेज, कामग्रन्थि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

26. प्राण मुद्रा

शरीर में शक्ति के अनेक स्रोत हैं उनमें वायु का स्थान महत्त्वपूर्ण है। देहाश्रित वायु भी दस तरह की मानी गई है उन वायुओं में पाँच वायु मुख्य हैं जिसे पंच प्राणतत्त्व कहते हैं। इन पाँच वायुओं के नाम हैं– प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान। इन पाँचों वायुओं को शरीर में सुव्यवस्थित रखने के लिए पाँच मुद्राएँ हैं। इन पाँचों वायुओं में प्राण और अपान वायु सबसे श्रेष्ठ हैं। प्राण और अपान वायु संतुलित हों तो योग साध्य होता है। योग और प्राणायाम के प्रयोगों से प्राण और अपान वायु सम बनती हैं, परन्तु प्राण और अपान मुद्रा का अभ्यास करने से योग सिद्ध होता है।

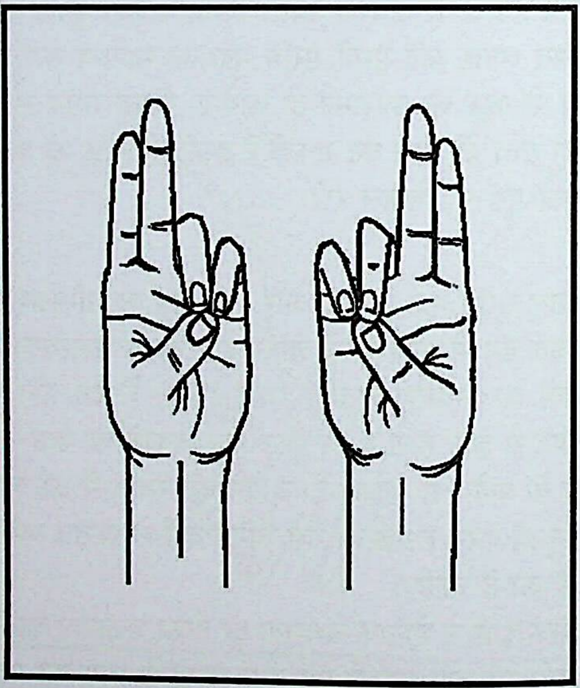

प्राण मुद्रा

संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार प्राण शब्द की उत्पत्ति प्र उपसर्ग और अन् + अच् अथवा घञ् प्रत्यय से हुई है। प्राण के शाब्दिक अर्थ अनेक हैं किन्तु वे सभी समानार्थक ही मालूम होते हैं जैसे– श्वास, जीवन शक्ति, जीवन, जीवनदायी वायु,जीवन का मूल तत्त्व, अन्दर खींचा हुआ श्वास, ऊर्जा, बल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामर्थ्य आदि। वस्तुतः श्वास के साथ-साथ जो वायु भीतर जाती है उसे प्राण वायु कहते हैं। यह शरीर के विभिन्न अंगों में व्याप्त है। इस प्राण शक्ति से ही शरीर ऊर्जावान बनता है। यदि शरीर में प्राणशक्ति की न्यूनता अथवा अधिकता हो जाये तो असंतुलन पैदा हो जाता है उससे मनोदैहिक व्याधियों का प्रभाव बढ़ने लगता है। प्राण मुद्रा का प्रयोग जीवनदायिनी शक्ति का संतुलन और शरीर को ऊर्जा प्रधान बनाये रखने के लिए किया जाता है। यौगिक परम्परा में प्रचलित प्राण मुद्रा स्वास्थ्य लाभ की सूचक है।

विधि

प्राण मुद्रा से संबंधित दो विधियाँ है–

प्रथम विधि– इस मुद्रा का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें। तत्पश्चात कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग और अंगूठे के अग्रभाग को परस्पर मिलायें, अनामिका अंगुली के अग्रभाग को कनिष्ठिका के नाखून से स्पर्शित करवाएँ, शेष तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियों को सीधा रखना प्राण मुद्रा है।

दूसरी विधि– पूर्ववत आसन में स्थिर होकर अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभागों को अंगूठे के अग्रभाग से मिलायें (अंगूठे का इन अंगुलियों पर हल्का सा दबाव रहें) शेष तर्जनी और मध्यमा को सीधी रखने पर प्राण मुद्रा बनती है।

निर्देश– 1. इस मुद्रा के लिए पद्मासन अथवा सिद्धासन सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं इसलिए इन्हीं आसनों में से एक का चुनाव करें। इन आसनों से प्राण ऊर्जा तेजस्वी बनती है।

2. इस मुद्रा का प्रयोग प्रारम्भ में 16 मिनट करें। फिर उसे क्रमशः बढ़ाते हुए निर्धारित अवधि तक पूर्णता प्रदान करें। प्राण ऊर्जा को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए 48 मिनट का प्रयोग पूर्ण कहलाता है। कोई एक साथ पूर्ण प्रयोग न कर पायें तो वह दो या तीन बार में इसे पूर्ण कर सकता है।

3. इस मुद्रा की विशेषता है कि इसे बिना किसी आवश्यकता के कितनी भी देर किया जा सकता है। इसका शरीर पर किसी भी प्रकार का विपरीत प्रभाव नहीं होता, जबकि अन्य मुद्राओं को केवल आवश्यकता के समय ही किया जाता है अन्यथा उनके दुष्प्रभाव की संभावना बनी रहती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. इस मुद्रा की एक विशेषता यह है कि इसे अन्य मुद्राओं के साथ भी निरंतर किया जा सकता है। यह दूसरी मुद्राओं के प्रभाव में वृद्धि ही करती है।

5. प्राण ऊर्जा रूप, शक्तिरूप है। वह इन्द्रिय, मन और भावों के समुचित उपयोग से सात्त्विक बनती है। अन्यथा वह इन्द्रियों को आसक्ति की ओर, मन को विकृति की ओर एवं भावों को निम्न मार्ग की ओर ले जा सकती है। इसलिए प्राण मुद्रा के माध्यम से होने वाली प्राण शक्ति के विकास का संतुलित समायोजन बराबर करते रहना चाहिए। अन्यथा शरीर में बढ़ती हुई प्राण ऊर्जा ऊर्ध्वगमन के स्थान पर अधोगमन की ओर प्रवृत्त हो सकती है।

विशेषकर पंच वायु तत्त्व की मुद्राएँ पूर्ण लाभ की प्राप्ति हेतु दोनों हाथों से करें। कारणवशात एक हाथ दूसरे कार्य में प्रवृत्त हो तो एक हाथ से भी मुद्रा की जा सकती है। दोनों हाथों से करने पर मुद्रा का पूर्णतः फायदा होता है।

सुपरिणाम

- शारीरिक दृष्टि से यह मुद्रा एक स्वीच की भाँति कार्य करती है जिसे दबाने पर सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है। प्राण मुद्रा से प्राण शक्ति का विकास होता है। प्राण ऊर्जा की कमी से ही व्यक्ति का शरीर व्याधिग्रस्त बनता है। इससे प्राणशक्ति को संग्रहित कर व्यक्ति सदैव स्वस्थ एवं निरोग रह सकता है।
- इस मुद्रा से शरीर में प्राण शक्ति का ऐसा संचरण होता है कि जैसे शरीर का डायनेमो शुरू हो गया हो। शरीर के हर एक अवयव में प्राण के प्रकंपनों का अहसास होता है।
- इस मुद्रा से रक्तवाहिनी नाड़ी में किसी तरह की बाधा हो तो दूर होती है और रक्तसंचार निर्बाध रूप से होने लगता है। शरीर में प्राण ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में हो तो नस या स्नायु के खिंचाव में राहत मिलती है।
- इस मुद्रा से प्रभाव से शरीर के किसी भी अवयव में सूनापन हो तो दूर होता है।
- पेरालेसिस के बाद की स्थिति में जमे हुए रक्त का परिशोधन कर उसका मार्ग प्रशस्त करती है।
- इस मुद्रा के नियमित प्रयोग से नेत्रों से सम्बन्धित समस्याएँ समाप्त होती है। आधुनिक युग टी.वी. और कम्प्यूटर का युग है। आज का अधिकतम समय इस प्रकार के उपकरणों के सामने बैठकर ही व्यतीत होता है। ये साधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान जीवन के आवश्यक अंग बन चुके हैं। इन साधनों का दुष्प्रभाव सर्वाधिक रूप से आँखों पर पड़ता है जिससे आँख की रोशनी में कमी आती है। प्राण मुद्रा के द्वारा इस तरह की हानि से बचा जा सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख आता है कि इस मुद्रा के द्वारा आँखों की रोशनी को बढ़ाया जाता था और समाप्त हुई रोशनी को वापस लाया जाता था। इस प्रकार प्राण मुद्रा आँखों की रोशनी बढ़ाने में मदद करती है।

• दुर्बल व्यक्ति के लिए यह चिन्तामणि रत्न के समान मूल्यवान है। इसके प्रयोग से इतनी शक्ति पैदा हो जाती है कि कृशकाय एवं दुर्बलमन वाला व्यक्ति मनोदेहिक स्तर पर परम शक्ति का अनुभव करता हुआ रोग संक्रमण से दूर रह सकता है। यह मुद्रा थकावट के समय भी लाभकारी है। इससे थोड़ी देर में ही नवशक्ति का संचार होकर थकान दूर हो जाती है। इस मुद्रा के माध्यम से विटामिन्स की कमी भी दूर की जा सकती है।

• मानसिक दृष्टि से एकाग्रता का विकास होता है, रक्त शुद्धि होने से शरीर में स्फूर्ति, चेतना में नया उत्साह, मन में अपूर्व उमंग, आत्मविश्वास और सुकर्म के प्रति उत्साह पैदा होता है। मन की अशान्ति और भावना की कठोरता दूर होती है।

• आध्यात्मिक दृष्टि से भूख-प्यास की भावना लुप्त होती है अत: उपवास के वक्त विशेष लाभदायी हैं। इससे खाने-पीने की इच्छा को नियंत्रित कर सकते हैं।

• इस मुद्रा में मेरूदण्ड सीधा रहने से प्राण ऊर्जा सक्रिय बनकर ऊर्ध्वमुखी बनती है जिससे इन्द्रिय, मन और भावों में सूक्ष्म परिवर्तन होता है और व्यक्ति की चेतना ऊर्ध्वगामी बनती है। प्राण मुद्रा से आत्मबल पुष्ट होता है, मोक्षलक्षी चेतनाएँ अपने साध्य में जुटी रहती है, देहजन्य रोगों से मुक्त होने के कारण भाव रोग भी समाप्त प्राय: की स्थिति पा लेते हैं।

• यह मुद्रा दोनों हाथों से करने पर निम्न शक्ति केन्द्रों के स्थान सक्रिय होते हैं–

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व**– जल एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, मेरुदण्ड, पैर।

• इस मुद्रा को एक हाथ से करने पर निम्न चक्रों आदि के विकार दूर होते हैं–

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**– जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

• प्राण मुद्रा में पृथ्वी, जल और अग्नि इन तीनों तत्त्वों का एक साथ संयोजन होता है। इससे शरीर तन्त्र में रासायनिक परिवर्तन तथा शरीर के समस्त अवरोध दूर होते हैं।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार इस मुद्रा में सायनस के कुछ बिन्दुओं पर दबाव पड़ने से सिर दर्द, सर्दी जुकाम, कफ, खांसी आदि के प्रकोप शान्त होते हैं। प्राणवायु मुख्य रूप से नासिका में, मुख में, हृदय में और नाभि के मध्यभाग में होती है।

27. अपान मुद्रा

हमारे समग्र शरीर में मुख्य रूप से प्राणवायु स्थित है। यह प्राण वायु शरीर के विभिन्न अवयवों एवं स्थानों पर भिन्न-भिन्न कार्य करती है इस दृष्टि से इस वायु के पृथक्-पृथक् नाम दे दिये गये हैं जैसे– प्राण, अपान, उदान, समान आदि। पूर्वकथित पंच वायु तत्त्व पाँच केन्द्रों में अलग-अलग कार्य करता है।

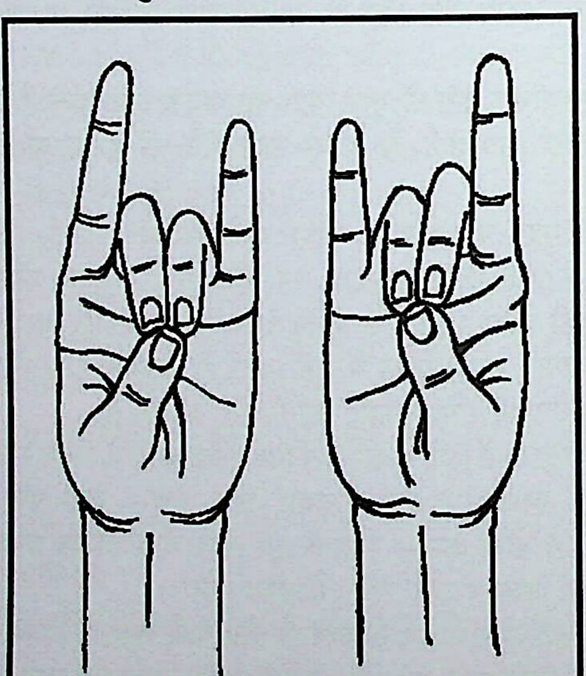

अपान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राण का मुख्य स्थान हृदय (आनन्द केन्द्र) है। प्राण नाभि से लेकर कंठ पर्यन्त प्रसरित है। प्राण का मुख्य कार्य श्वास-प्रश्वास करना, खाया हुआ भोजन पचाना, भोजन के रस को अलग-अलग इकाईयों में विभक्त करना, भोजन से रस बनाना, रस से अन्य धातुओं का निर्माण करना है।

अपान वायु का स्थान गुदा एवं गुदा का ऊपरी भाग है। ये स्थान स्वास्थ्य केन्द्र और शक्ति केन्द्र कहलाते हैं। योग ग्रन्थों में इन्हें स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र कहा जाता है। अपान शक्ति मलद्वार के भीतर मूत्रेन्द्रिय तक फैली हुई है। अपान वायु का मुख्य कार्य मल-मूत्र, वीर्य, रज और गर्भ को बाहर निकालना है। चलने-बैठने, उठने-सोने आदि गतिशील स्थितियों में मदद करना है।

जिस प्रकार जीवन, परिवार, समाज को टिकाये रखने के लिए अर्थोपार्जन जरूरी है उसी प्रकार विसर्जन भी अनिवार्य है। कदाच शरीर में ग्रहण एवं संग्रह करने की ही शक्ति हो और निर्गमन के लिए कोई अवकाश न हो तो व्यक्ति ही क्यों? किसी भी प्राणधारी सत्ता के लिए एक दिन भी जिंदा रहना मुश्किल है। विसर्जन के द्वारा शरीर का शोधन होता है। शरीर विसर्जन की क्रिया एक, दो या तीन दिन बन्द रखें तो पूरा शरीर मल से आकीर्ण और दुर्गन्ध युक्त हो जाए। ऐसी स्थिति में मनुष्य का स्वस्थ रहना मुश्किल हो जाता है। अशुचि एवं गन्दगी का शोधन करने के लिए अपान मुद्रा की जाती है।[23]

संस्कृत के अपानम् का शाब्दिक अर्थ गुदा है। शरीर में मल-मूत्र का स्थान गुदा कहलाता है। अपान वायु से तात्पर्य-शरीर में रहने वाली वह वायु जो नीचे की ओर गमन करती है और गुदा के मार्ग से बाहर निकलती है। मल या अशुचि द्रव्य को बाहर निकालना अपान वायु का निजी स्वभाव है। यह मुद्रा योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की यौगिक परम्परा में दैहिक शुद्धि के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त की जाती है।

विधि

किसी भी ध्यान आसन में तन-मन को सुस्थिर कर दें। तदनन्तर अंगूठे के अग्रभाग को हल्का दबाव देते हुए मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों से स्पर्शित करें, शेष तर्जनी और कनिष्ठिका अंगुलियों को सीधा रखने पर अपान मुद्रा बनती है।[28]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्देश– 1. इस मुद्रा के परिणामों को पाने के लिए उत्कटासन सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। अपवादतः सुखासन आदि किसी भी ध्यान आसन का प्रयोग कर सकते हैं।

2. इस मुद्रा को प्रतिदिन 48 मिनट करने पर ही पूर्ण अभ्यास कहलाता है। यदि एक साथ 48 मिनट की अवधि पूरी न कर सकें तो इसे तीन बार में 16-16 मिनट करें। उक्त कोटि का अभ्यास व्यक्ति को अनुभूति के स्तर तक पहुँचाता है।

3. इस मुद्रा के प्रयोग हेतु निश्चित समय का प्रावधान नहीं है, यथानुकूलता किसी भी वक्त कर सकते हैं।

सुपरिणाम

• शारीरिक जगत की अपेक्षा अपान वायु की कमी से शरीर में अनेक व्याधियाँ जन्म ले लेती हैं। इसकी कमी होने पर देहगत अशुद्ध तत्त्वों को विसर्जित करने में भी कठिनाई आती है। फलतः यह शरीर अनेक व्याधियों एवं मलिन द्रव्यों का घर बन जाता है जबकि अपान मुद्रा का नैरन्तर्य प्रयोग शरीर को हर प्रकार से शुद्ध करता है।

• इसका प्रयोग शरीर के लिए आग में तपाने के समान है क्योंकि इससे रक्त शुद्ध होता है और शरीर पवित्र रहता है। अपान वायु का स्थान स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार चक्र, पेट, नाभि, गुदा, लिंग, घुटना, पिंडी और जांघ में माना गया है। इस मुद्रा से इन सभी स्थानों पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। यदि मूत्र बंद की तकलीफ हो, तब 45 मिनट यह मुद्रा करने से पेशाब खुलकर आता है। कब्ज की शिकायत में राहत देता है, मलावरोध की समस्या दूर हो जाती है।

• इसी तरह पेट के विकार दूर होते हैं। उल्टी, हिचकी या जी मचलता हो तो शान्ति मिलती है। पेट के हर एक अवयव की क्षमता बढ़ती है और हृदय शक्ति सम्पन्न बनता है।

• पसीना कम होता हो या बहुत अधिक होता हो तो इस मुद्रा से फायदा होता है। नाभि या गर्भाशय अपनी जगह से हट जायें तब इस मुद्रा से अपने स्थान में आ जाते हैं। एक संशोधक के अनुसार गर्भवती स्त्रियाँ आठवें महीने में इस मुद्रा का निरंतर प्रयोग पैंतालीस मिनट करें तो प्रसव बिना किसी कष्ट के अपने निश्चित समय पर हो सकता है। यदि किसी गर्भवती स्त्री को प्रसव में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठिनाई या देर हो रही है तो इसका निरंतर प्रयोग करने से प्रसव शीघ्रमेव सहज रूप से हो सकता है।

• मासिक धर्म सम्बन्धी किसी तरह की तकलीफ हो तो इस मुद्रा से आराम मिलता है। मासिक स्राव नियंत्रित होकर उससे होने वाले दर्द दूर होते हैं। अनुभवी व्यक्ति के कहे अनुसार यह मुद्रा हृदय आघात के वक्त भी लाभ देती है। उस समय रोगी बायें हाथ से अपान मुद्रा बनाकर दायें हाथ से अंगूठा, अनामिका एवं मध्यमा को कसकर दबाएं तो शीघ्र लाभ मिलता है।

• इस मुद्रा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्राण-अपान आदि पाँचों वायुओं के दोषों का परिष्कार अपान मुद्रा से किया जा सकता है।

• दांत सम्बन्धी रोगों से मुक्ति पाने के लिए अपान मुद्रा और प्राण मुद्रा साथ करनी चाहिए। डायबिटीज के उपचार हेतु अपान मुद्रा और प्राण मुद्रा साथ करनी चाहिए। सिर दर्द से मुक्त होने के लिए ज्ञान मुद्रा और अपान मुद्रा साथ करनी चाहिए। आँख, कान, नाक या मुँह के किसी भी विकार का निवारण करने के लिए अपान मुद्रा और प्राण मुद्रा साथ करनी चाहिए।

• मानसिक जगत की अपेक्षा उदरजन्य, लिंगजन्य, नाभिजन्य एवं हृदयजन्य व्याधियों का उपशमन होने से परम स्वस्थता का अनुभव होता है, मनःमस्तिष्क शान्त-प्रशान्त रहता है तथा चित्त अलौकिक प्रसन्नता का संवेदन करता है।

• आध्यात्मिक जगत की अपेक्षा शरीर के विष दूर होने से निर्मल परिणाम उदित होते हैं और बौद्धिक स्तर पर सूक्ष्म सत्ता दृश्य होने लगती है। विजातीय तत्त्व दूर होने से सात्त्विकता आती है। प्राण और अपान मुद्रा का योग हो तो साधक ऊर्ध्व रेता बनता है। योग शास्त्र में इन दोनों ही मुद्राओं का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है।

• यह मुद्रा दोनों हाथों से करने पर निम्न चक्रों आदि का शोधन होता है–

चक्र– आज्ञा एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व**– आकाश एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि**– पीयूष, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र**– दर्शन एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• इस मुद्रा को एक हाथ से करने पर निम्न ग्रन्थियों आदि के दुष्प्रभाव समाप्त होते हैं–

चक्र– मणिपुर एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन संस्थान, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार इसमें दाब के जो केन्द्र बिन्दु हैं उससे श्वासनली एवं आमाशय के रोग दूर होते हैं। मूत्र सम्बन्धी दोष भी दूर होते हैं। इस मुद्रा में अग्नि-आकाश-पृथ्वी इन तत्त्वों का संयोजन होता है जिसके फलस्वरूप उपरोक्त सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

28. व्यान मुद्रा

प्रत्येक देहधारी जीव सत्ता में पाँच प्रकार की वायु स्थित है। सभी वायुओं के अपने अलग-अलग कार्य हैं, शरीर में उनके पृथक्-पृथक् स्थान हैं। जैसे प्राण वायु मुख्य रूप से हृदय स्थान पर हैं और नाभि से लेकर कंठ-पर्यन्त फैला हुआ है। अपान वायु का स्थान नाभि के निम्न भाग से लेकर मलद्वार के भीतर मूत्रेन्द्रिय तक है। इसी तरह व्यान वायु शरीर के समस्त अवयवों में व्याप्त है।

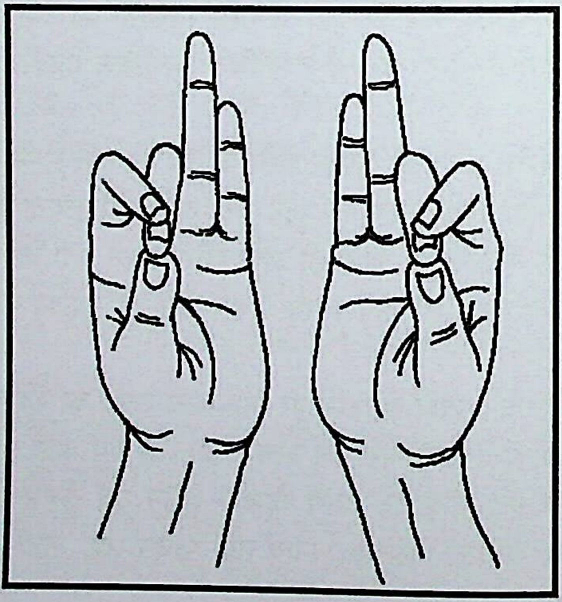

व्यान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत व्याकरण के अनुसार व्यान वायु का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी उक्त अर्थ को ही सूचित करता है– 'व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोति' अर्थात जो समस्त शरीर में व्याप्त है उसे व्यानवायु कहते हैं। 'वि' उपसर्ग विशेष का बोधक है, 'आ' उपसर्ग समग्रता का सूचक है अर्थात जो विशेष प्रकार से और समग्र रूप से परिव्याप्त है वह व्यान वायु कहलाती है। व्यान शब्द की रचना वि + आ + अन् + अच् से हुई है। इसमें वि + आ उपसर्ग हैं और अन् + अच् प्रत्यय हैं। इस मुद्रा से व्यान वायु साम्य स्थिति में रहती है परिणामतः इन्द्रियाँ, शरीर एवं चेतन मन स्वस्थ रहता है।

विधि

ध्यान के लिए सर्वोत्तम पद्मासन या सुखासन में स्थिर हो जायें। तत्पश्चात अंगूठे के अग्रभाग के द्वारा हल्का दबाव देते हुए उसे मध्यमा के अग्रभाग से मिलायें, फिर तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को मध्यमा अंगुली के नखस्थानीय भाग पर रखें, शेष अनामिका और कनिष्ठिका को सीधी रखना व्यान मुद्रा है।

निर्देश– 1. ध्यान योग्य किसी भी आसन में इस मुद्रा का प्रयोग कर सकते हैं 2. दिन या रात्रि के किसी भी वक्त में यह मुद्रा कर सकते हैं। 3. इसका प्रारम्भिक अभ्यास 10 से 16 मिनट तथा थोड़े दिनों के पश्चात 48 मिनट तक का अभ्यास करना चाहिए।

सुपरिणाम

व्यान शब्द की परिभाषा के अनुसार यह वायु पूरे शरीर में व्यापक रूप से फैला हुआ है। फिर भी दोनों नेत्रों में, दोनों कर्णों में, दोनों कंधों में और कंठ में सूक्ष्म रूप से रहता है। व्यान मुद्रा का नियमित अभ्यास व्यान वायु को संतुलित करता है। इससे व्यान वायु अच्छे ढंग से अपना कार्य करती हैं।

इस मुद्रा के द्वारा निम्न चक्रों आदि का शोधन होने से अनेक फायदे होते हैं–

चक्र– अनाहत एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व–** वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रन्थ **केन्द्र–** आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, श्वास, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, स्वरतंत्र, गला, मुँह, नाक, कान आदि।

• एक्यूप्रेशर के अनुसार मध्यमा अंगुली में साइनस के बिन्दु हैं उन पर दबाव पड़ने से सर्दी-जुकाम, सिरदर्द, कफ आदि का निवारण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• इस मुद्रा में अग्नि तत्त्व एवं आकाश तत्त्व का संयोजन होने से आकाश मुद्रा के सभी परिणाम प्राप्त होते हैं जैसे– कर्ण शक्ति विकसित होती है, कान सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है, हृदय रोग दूर होते हैं और अस्थियाँ परिपुष्ट बनती हैं।

• तर्जनी अंगुली का अग्रभाग भी दाब से प्रभावित होता है इससे वायु सम्बन्धी सर्व प्रकार के रोगों का उपशमन होता है।

• ज्योतिष के अनुसार मध्यमा शनि की अंगुली है। अग्नि और शनि तत्त्व के मिलन से आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

• वैदिक परम्परा में भगवान को भोग चढ़ाते वक्त और यज्ञ करते वक्त 'व्यान: स्वाहा:' शब्द का प्रयोग करते हुए इस मुद्रा से आहूति दी जाती है।

29. उदान मुद्रा

शरीरस्थ पाँच प्राणों में से एक प्राण वायु का नाम है उदान वायु। उदान शब्द की रचना संस्कृत के 'उद्' उपसर्ग, 'अन्' और 'अच्' प्रत्यय के योग से हुई है। यह वायु मुख्यतया कण्ठ स्थान में रहता है और दोनों हाथ-पैर में भी रहता है।

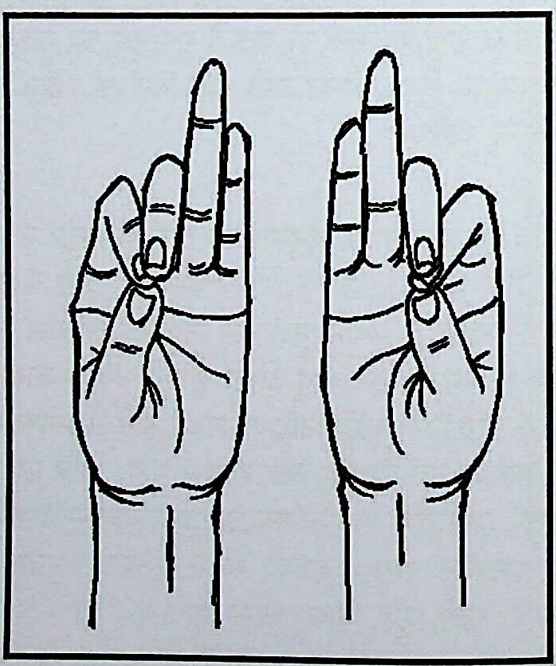

उदान मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह मुद्रा उदान वायु को समस्थिति में रखते हुए उसके वैषम्य से होने वाले शारीरिक एवं चैतसिक दुष्प्रभावों को निरस्त करने के प्रयोजन से की जाती है।

विधि

किसी भी आरामदायक ध्यानासन में बैठ जाएं। तदनन्तर अंगूठे के अग्रभाग द्वारा हल्का दबाव देते हुए उसे तर्जनी के अग्रभाग से योजित करें। फिर तर्जनी अंगुली के नखस्थानीय भाग पर मध्यमा अंगुली के अग्रभाग को स्पर्शित करें तथा शेष अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को सीधी रखने पर उदान मुद्रा बनती है।

निर्देश– इस मुद्रा प्रयोग के लिए आवश्यक नियम एवं सूचनाएँ व्यानवायु के समान ही समझें।

सुपरिणाम

इस मुद्रा के माध्यम से उदान वायु का मुख्य स्थल कंठ भाग (विशुद्धि केन्द्र) खास तौर से प्रभावित होता है।

- मानव शरीर की संरचना के अनुसार इस कंठ प्रदेश पर थायरॉइड और पैराथायरॉइड नामक दो ग्रन्थियाँ हैं जिनके संतुलित रहने पर स्वर, श्वास नली, गले सम्बन्धी बीमारियों का प्रकोप बढ़ता नहीं है, जबकि असंतुलित होते ही रोगाणु अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर देते हैं परिणामत: मानसिक और कायिक रूप से व्यक्ति अशान्त हो जाता है। इस मुद्राभ्यास से थायरॉइड और पेराथायरॉइड ग्रंथियों के स्राव संतुलित होते हैं और तज्जनित तकलीफों से राहत मिलती है।

- आध्यात्मिक स्तर पर विशुद्धि केन्द्र विचार और वचन का उद्भव स्थान माना जाता है इसलिए विचार और वचन की शुद्धि होती है। ध्यान के दौरान उदान मुद्रा करने से विशुद्धि और ज्ञान केन्द्र (सहस्रारचक्र) की शक्ति जागृत होने से चेतना ऊर्ध्वगामी बनती है और ध्यान साधना में प्रगति होती है।

- इस मुद्रा के द्वारा निम्नोक्त ग्रन्थियों आदि से सम्बन्धित भी कई फायदें होते हैं–

चक्र– मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड **केन्द्र–** शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दें, पैर, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• एक्युप्रेशर विज्ञान के अनुसार अंगुलियों के पौरवें मस्तिष्क स्थानीय हैं। इन पर दाब पड़ने से सिरदर्द ठीक होता है तथा मस्तिष्क की क्षमता में वृद्धि होती है। अंगुष्ठ के ऊपरी सिरे का निकटवर्ती स्थान दर्शन एवं चक्षुकेन्द्र जनित है इन पर दबाव पड़ने से पिनीयल एवं पिच्युटरी ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं जिसके फलस्वरूप शरीर के समग्र तन्त्र संतुलित रहते हैं तथा मैत्री, करूणा, ऋजुता आदि निर्मल विचारों की तरंगे प्रस्फुटित होती हैं।

• हिन्दू धर्म में भगवान को भोग चढ़ाते समय और यज्ञ करते समय 'उदान: स्वाहा:' इस शब्द का प्रयोग करते हुए इस मुद्रा से आहूति दी जाती है।

30. समान वायु

जीवयुक्त शरीर का सम्यक निर्वहन करने के लिए पंच प्राणों (वायुओं) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन प्राण तत्त्वों की सम-विषम स्थिति के अनुरूप ही शरीर और चेतना कार्य करती हैं। हमारा शरीर एवं मन पंच प्राणों से प्रभावित होता रहता है। पाँचों प्राणों में अन्तिम प्राण का नाम है समान वायु।

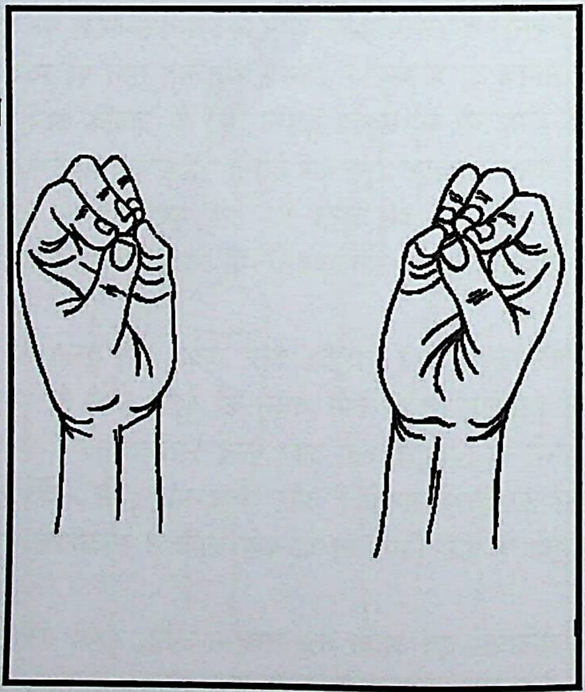

समान वायु मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान वायु नाभि के गर्त्त में रहती है। इसे पाचन शक्ति के लिए आवश्यक माना गया है। समान शब्द अनेकार्थक है– मुख्य तौर पर तुल्य, सदृश, एक समान, बराबर आकार इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ समान शब्द का प्रयोग शरीरस्थ एक वायु के रूप में हुआ है। स्वरूपतः इस मुद्रा में पाँचों अंगुलियों का संयोग होता है इस दृष्टि से भी इसे समान वायु कहा गया प्रतीत होता है। शब्द रचना के अनुसार इसमें सम् उपसर्ग और अन् + अण् प्रत्यय का योग हुआ है। सम् उपसर्ग समानार्थक है क्योंकि इस मुद्रा के वक्त पाँचों अंगुलियों के पौरवें समान रूप से जुड़ते हैं। इस मुद्रा से समान वायु को स्वस्थान में संतुलित रखते हुए उससे संभवित दोषों का परिहार किया जाता है।

विधि

स्वयं के लिए आरामदायक आसन में बैठ जायें। तदनन्तर दोनों हाथों को सामने की ओर सीधा करते हुए एवं पाँचों अंगुलियों के अग्रभाग को आसमान की ओर रखते हुए परस्पर संयोजित करना अथवा मिलाना समान मुद्रा कहलाती है।

निर्देश– इस मुद्रा के लिए भी आवश्यक सूचनाएँ पूर्ववत समझें।

सुपरिणाम

इस मुद्रा में पाँचों अंगुलियों का संयोजन होता है इसलिए इसका दूसरा नाम समन्वय मुद्रा भी है।

• समान मुद्रा की विशेषता यह है कि इसके अभ्यास से समान वायु व्यवस्थित रूप से काम करता है। समान वायु की सुनियोजित गतिविधि से शेष वायु भी सम रहते हैं क्योंकि समान वायु दूसरे वायुओं के साथ सम्पूर्ण शरीर में रहता है।

इस मुद्राभ्यास में पांचों तत्त्वों का संयोजन होने से पांचों तत्त्व संतुलित रहते हैं तथा व्यक्ति तत्सम्बन्धी रोगों से मुक्त रहता है।

• अध्यात्म स्तर पर इस मुद्रा के द्वारा सभी तत्त्वों का संतुलन होने से समन्वयता, सौहार्द्रता, परदुःखकारता, उदारता के भाव विकसित होते हैं।

• शरीरस्थ सभी वायु साम्यभाव में रहने से अनिष्ट (मनोदैहिक व्याधियाँ एवं आसुरी शक्तियों के उपद्रवों) का निवारण होता है और सात्त्विक विचारों का अभ्युदय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• इस मुद्रा का अभ्यासी साधक निम्न शक्ति केन्द्रों को जागृत करते हुए तज्जनित कई लाभों को प्राप्त करता है–

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** प्रजनन अंग, मल-मूत्र अंग, मेरूदण्ड, गुर्दे आदि।

• एक्युप्रेशर के आधार पर इसमें साइनस, मस्तिष्क, पिच्युटरी ग्रंथि एवं पिनियिल ग्रन्थि के पोइन्ट भी दबते हैं। जिससे सर्दी-जुकाम, सिरदर्द, नजला, खाँसी, कफ जैसे रोगों का शमन होता है और ग्रन्थियों के स्राव नियंत्रित होकर शारीरिक शक्तियों का विकास करते हैं।

• हिन्दू धर्म में इस मुद्रा का प्रयोग जाप, अनुष्ठान एवं यज्ञ आदि के वक्त भी किया जाता है।

31. अपान वायु मुद्रा

अपान मुद्रा एवं वायु मुद्रा के संयोग से निर्मित मुद्रा को अपान वायु मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा में अपान मुद्रा और वायु मुद्रा का सम्मिश्रण है।

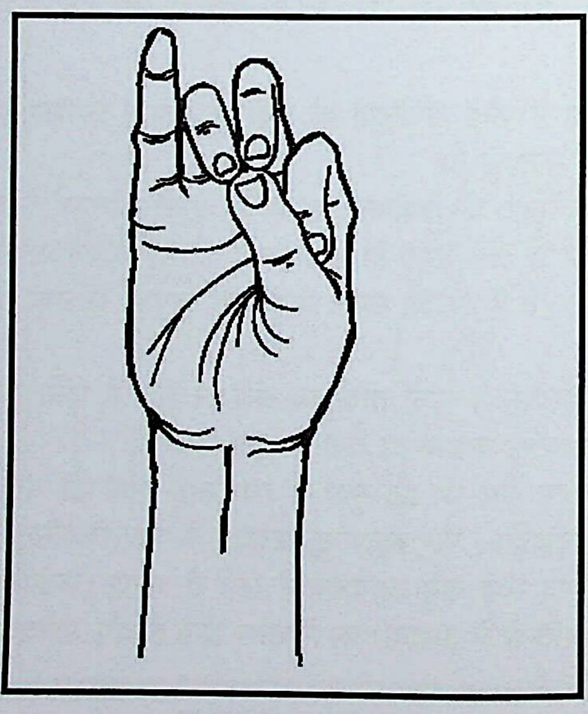

अपान वायु मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ सहज प्रश्न उठता है कि अपान मुद्रा भी शरीरस्थ पाँच वायुओं में से वायु का एक प्रकार है तथा वायु मुद्रा में निहित वायु शब्द भी वायु अर्थ को द्योतित करता है तब दोनों वायु भिन्न-भिन्न हैं या एकरूप? इस समाधान के लिए दोनों मुद्राओं का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि अपान वायु शरीर के मूलाधार चक्र (मल-मूत्र द्वार का मध्य भाग) और स्वाधिष्ठान चक्र (मेरूदण्ड के अन्तिम छोर) पर स्थिर रहता है जबकि सामान्य वायु श्वास-प्रश्वास के द्वारा गृहीत-विसर्जित की जाती है। इस तरह दोनों वायुओं में स्वरूप भेद है। अपान वायु मुद्रा मृत संजीवनी मुद्रा के नाम से भी जानी जाती है। यह यौगिक परम्परा की मुद्रा है जो उसके अनुयायियों द्वारा धारण की जाती है। यह दिल और धड़कन के लिए उपयोगी है।

विधि

सर्वप्रथम वज्रासन या सुखासन में बैठ जायें। तदनन्तर वायु मुद्रा (तर्जनी के अग्रभाग को अंगूठे के मूल भाग से स्पर्शित) करके एवं हल्का सा दबाव देते हुए अंगूठे के अग्रभाग को मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग से जोड़ें। फिर कनिष्ठिका अंगुली को सीधा रखने पर अपान वायु मुद्रा बनती है।[25]

निर्देश– 1. इस मुद्रा हेतु वज्रासन, उत्कटासन, सुखासन, समपादासन ये सभी श्रेष्ठ कहे गये हैं। 2. मुद्रा की सफलता हेतु 48 मिनट का प्रयोग आवश्यक है। प्रारम्भ में 10 से 16 मिनट का अभ्यास कर सकते हैं किन्तु शनैः शनैः 48 मिनट तक पहुँचना जरूरी है। 3. इच्छा के अनुसार किसी भी समय यह मुद्राभ्यास किया जा सकता है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करने से शारीरिक तौर पर सबसे अधिक हृदय प्रभावित होता है। अचानक हृदय गति का अवरोध, एन्जाइना पेईन एवं हाई ब्लडप्रेशर के वक्त इस मुद्रा का प्रयोग सोरबिट्रेट दवा अथवा पावरफुल इंजेक्शन का कार्य करता है। इसलिए यह मुद्रा मृत संजीवनी मुद्रा भी कहलाती है।

• इस मुद्रा को प्रतिदिन प्रातः एवं शाम 15-15 मिनट करें तो हृदय की घबराहट, हृदय की मंदगति, हार्टबीट्स का चूकना, पेट की वायु का हृदय तक पहुँचकर तकलीफ देना आदि से राहत मिलती है और हृदय शक्तिशाली बनता है।

• इस मुद्राभ्यास से अधिक जागरण, मानसिक चिन्ता, परिश्रम की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकता, रक्त संचय की गड़बड़ी के कारण से होने वाला सिरदर्द दूर होता है। शरीर सम्बन्धी किसी तरह का वायु दोष हो तो समाप्त हो जाता है। पेट जनित विकार शान्त होते हैं जैसे कि कब्ज हो तो मल अन्दर से साफ होता है, पेशाब बंद हो तो शुरू हो जाता है, पेट के अवयवों की क्षमता बढ़ती है।

• इस मुद्रा के द्वारा दाँत सम्बन्धी दर्द और विकार भी दूर होते हैं। गुदा के स्नायु निरोग रहते हैं। शरीर का तापमान संतुलित-सुनियोजित रहता है। वात के रोग जो वायु मुद्रा से भी ठीक न हो तो इस मुद्रा से ठीक हो जाते हैं। इस तरह प्रस्तुत मुद्रा से अपान मुद्रा एवं वायु मुद्रा दोनों मुद्राओं के फायदे होते हैं।

• इस मुद्रा से सप्त चक्रों आदि का शोधन होने के कारण तत्संबंधी फायदे भी होते हैं–

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं पीयूष ग्रंथि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

• एक्युप्रेशर चिकित्सा के अनुसार तर्जनी अंगुली पर दाब पड़ने से मेरुदण्ड के दोष शान्त होते हैं तथा अंगुष्ठ के मूल में तर्जनी का दबाव पड़ने से थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थियों के स्राव नियन्त्रित होते हैं।

32. वयन मुद्रा

संस्कृत कोश के मुताबिक वयन का अर्थ है बुनना, बुनने की क्रिया करना। जब हाथ से सिलाई करते हैं अथवा स्वेटर आदि बुनते हैं उस समय हस्तांगुलियों की जो स्थिति रहती है, दर्शाये चित्र में हाथों की स्थिति उसी प्रकार की है इसलिए इस मुद्रा का नाम वयन मुद्रा है।

यौगिक परम्परा में प्रयुक्त यह एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा के सम्यक प्रयोग से उच्च रक्तचाप को संतुलित किया जा सकता है। इस मुद्रा के प्रभाव से वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व को स्थिर कर सकते हैं। शरीर की रक्त-वाहिकाओं में वायु रक्त के लिए प्रवाहक का कार्य करती है। जब वायु का प्रवाह रक्त वाहिकाओं में बहुत तेज हो जाता है तो धमनियों एवं फेफड़ों में रक्त का दबाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

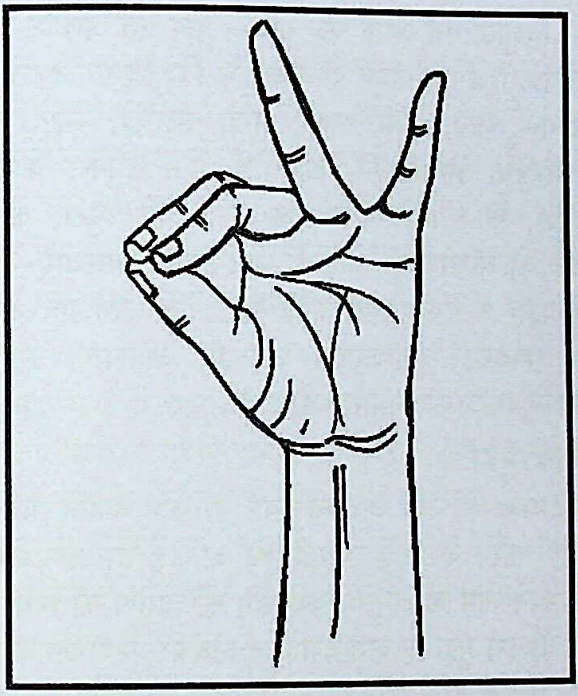

वयन मुद्रा

बढ़ जाता है उससे शरीर में अनेक प्रकार की परेशानी होने लगती है जैसे चक्कर आना, अनिद्रा रोग, नेत्र रक्तिम हो जाना आदि।

यदि वयन मुद्रा का अभ्यास नियमित रूप से किया जाए तो व्यक्ति हृदय एवं वायु सम्बन्धी समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

विधि

दायें अथवा बायें हाथ को शरीर के अग्रभाग पर स्थिर करें। फिर तर्जनी और मध्यमा के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्शित करते हुए शेष अंगुलियों को आकाश की तरफ सीधी रखने से जो मुद्रा बनती है उसे वयन मुद्रा कहा गया है।[29]

सुपरिणाम

इस मुद्रा के द्वारा निम्न शक्ति केन्द्रों के प्रभावित होने से अध्याय-1 के अनुसार कई सुपरिणाम प्राप्त होते हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्र– विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– थायरॉइड, पेराथारॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– कान, नाक, गला, मुख, स्वरयंत्र, स्नायु तंत्र, निचला मस्तिष्क **शारीरिक समस्याएँ**– आयुवृद्धि, ब्रेन ट्युमर, कोमा, सिरदर्द, मिरगी, अनिद्रा, पागलपन, गठिया, बहरापन, गले, मुख, कंठ आदि की समस्या, कानों का संक्रमण दूर होता है। **भावनात्मक समस्याएँ**– भावनाओं में रूकावट, व्यवहार अनियंत्रण, आंतरिक चिंता, अध्यात्म एवं अनुशासन की कमी, भय, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार, अज्ञानता, स्मृति समस्या, मानसिक विकार आदि का निवारण होता है।

33. कामजय मुद्रा

कामजय शब्द का अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है। काम अर्थात विषय-वासनाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए जो मुद्रा की जाती है उसे कामजय मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार कामभोग की वासना को नियन्त्रित करने में परम सहायक है। इस मुद्रा के द्वारा कामजित तीर्थंकर पुरुषों अथवा इष्ट देवों का स्मरण किया जाता है अत: कामजयी आत्मपुरुषों की सूचक मुद्रा है। यह मुद्रा योग परम्परा में उसके श्रद्धालुओं और आराधकों के द्वारा धारण की जाती है।

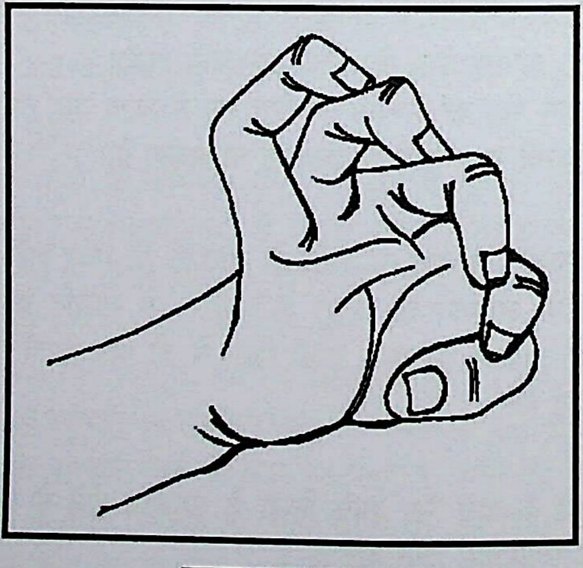

कामजय मुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि

दायें हाथ की हथेली को छाती के अग्रभाग पर स्थिर करें। फिर तर्जनी अंगुली पीछे की तरफ झुकी हुई और उसका अग्रभाग अंगूठे के नाखून के नीचे के भाग का स्पर्श करता हुआ हो, मध्यमा अंगुली झुकी हुई और तर्जनी के दूसरे जोड़ का स्पर्श करती हुई हों, अनामिका अंगुली मुड़ी हुई और मध्यमा के दूसरे जोड़ का स्पर्श करती हुई हों तथा कनिष्ठिका अंगुली मुड़ी हुई और अनामिका के दूसरे जोड़ का स्पर्श करती हुई हों इस प्रकार कामजय मुद्रा बनती है।[27]

सुपरिणाम

• इस मुद्राभ्यास से अनुचित कामवेग को शान्त किया जा सकता है। किसी परिस्थिति विशेष में बढ़ती वासना को कुंठित करने के लिए इस मुद्रा का प्रयोग इंजैक्शन जैसा कार्य करता है। इससे मन पर तत्काल अंकुश लगता है अत: यह मुद्रा सभी के लिए उपयोगी है। यह मुद्रा उन साधकों के लिए निर्विवादत: उपयोगी है जो कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए तत्पर तो हैं परन्तु जागृत कर नहीं पाते।

• इस मुद्रा से निम्नांकित ग्रन्थियों आदि के दोषों का उपशमन होता है तथा इससे तद्स्थानीय सभी प्रकार के अच्छे कार्य सिद्ध होते हैं–

चक्र– मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** अग्नि, जल एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र, यकृत, तिल्ली, आँतें, हृदय, फेफड़ें, भुजाएं एवं रक्त संचरण तंत्र **शारीरिक समस्याएँ–** खून की कमी, शरीर में गन्ध, दाद-खाज, नपुंसकता, मधुमेह, अल्सर, एलर्जी, दमा, वायु विकार, प्रजनन तंत्र की समस्या, हृदय रोग, छाती में दर्द, फेफड़ों में विकार आदि का उपशमन होता है। **भावनात्मक समस्याएँ–** नशेबाजी, बेहोशी, असृजनशीलता, दुखीपन, अनुत्साह, निर्ममता, अविश्वास, काम-वासना का असंतुलन, क्रोधादि कषायों की उत्तेजना, निष्क्रियता, अव्यावहारिकता आदि का निवारण होता है।

भारतीय ऋषियों ने मानव शरीर पर कई खोजें की हैं उन्हीं खोजों के आधार पर प्राणायाम, ध्यान, आसन मुद्रा आदि की वैज्ञानिक विधियाँ निर्धारित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की गई जो मानव के शरीर को स्वस्थ रख सके।

मनुष्य रोग ग्रस्त तभी होता है, जब शरीरस्थ तत्त्वों का संतुलन बिगड़ता है। मुद्रा विज्ञान इन तत्त्वों की स्थिति को संतुलित रखने का अचूक उपाय है। पंच तत्त्वों का असंतुलन शरीर के अन्य आन्तरिक तन्त्रों को भी विषम कर देता है जिसके कारण मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर भी व्यक्ति का आत्मविश्वास डगमगाने लगता है। मुद्रा प्रयोग सभी प्रकार के रोगों का निदान बिना किसी औषधि के करता है एवं तत्सम्बन्धी अन्य विकारों को भी उपशान्त करता है।

सन्दर्भ-सूची

1. *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ, केशवदेव, पृ. 37*
2. *वही, पृ. 52*
3. *वही, पृ. 41*
4. *वही, पृ. 46*
5. *वही, पृ. 47*
6. *(क) मुद्रा विज्ञान, नीलम संघवी, पृ. 29*
   (ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 35
7. *हस्तमुद्रा प्रयोग और परिणाम, मुनि किशनलाल, पृ. 76-77*
8. *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 64*
9. *संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 1162*
10. *(क) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 64*
    (ख) मुद्रा विज्ञान, नीलम संघवी, पृ. 35
11. *हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम, पृ. 62*
12. *मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 64*
13. *हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम, पृ. 68*
14. *आधार, वही, पृ. 69-70*
15. *आधार– (क) मुद्रा विज्ञान, नीलम संघवी, पृ. 24*
    (ख) हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम, मुनि किशनलाल, पृ. 59-53
16. *शारदातिलक, 18/13 की टीका*
17. *मुद्रा विज्ञान, पृ. 23*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

18. संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 705
19. मुद्रा विज्ञान, पृ. 30
20. शारदातिलक, 6/4 की टीका
21. मुद्रा विज्ञान, नीलम संघवी, पृ. 33
22. (क) प्रपंचसार सार संग्रह, पृ. 468
    (ख) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, पृ. 39
23. हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम, पृ. 44
24. मुद्रा विज्ञान ऐ वे ऑफ लाईफ, केशवदेव, पृ. 56-59
25. वही, पृ. 131
26. वही, पृ. 100
27. वही, पृ. 100

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्याय-3

उपसंहार

शारीरिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के. के. जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौनसा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? इससे सम्बन्धित आधुनिक मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन कर रहे हैं वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य सहयोगी हैं किन्तु प्राय: मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है अत: मुद्रा विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करने के पश्चात ही तत्संबंधी मुद्राओं से उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही विधि से एवं विश्वास पूर्वक करना अनिवार्य है।
- विशिष्ट साधना अथवा रोगोपचार के दौरान यदि मुद्राओं का प्रयोग सम्यक विधि से किया जाए तो तुरन्त असरकारक होती हैं।

शारीरिक रोगोपचार की मुद्राएँ

अनिद्रा– ज्ञान मुद्रा, प्राण मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, मृगी मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, वायुसुरभि मुद्रा, वयन मुद्रा।

आफरा– वायु मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलस्य– पृथ्वी मुद्रा, प्राण मुद्रा, पंचपरमेष्ठी मुद्रा, वरुण मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा।

आँखों के रोग– प्राण मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, उपाध्याय मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, पंकज मुद्रा।

• **आँतों के रोग–** ज्ञान ध्यान मुद्रा, बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा।

• **आमाशय सम्बन्धी विकार–** ज्ञान ध्यान मुद्रा, शून्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा।

• **अण्डाशय सम्बन्धी विकार–** बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, आदिति मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

अपच– ज्ञानध्यान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, सुरभि मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा।

अपस्मार मिरगी (Epilepsy Fits)– ज्ञान-वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, वरुण मुद्रा, सुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

अकड़न– पूर्णज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, आदिति मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

• **अस्थितंत्र सम्बन्धी रोग–** ज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वरुण मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, लिंग मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा।

उल्टी– अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा।

उच्च रक्तचाप– आकाश मुद्रा, प्राण मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, हार्ट मुद्रा, ज्ञान-ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, बंधक मुद्रा।

ऊर्जा की कमी– ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्व ज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा, किडनी मूत्राशय मुद्रा, सूर्य मुद्रा, प्राण मुद्रा, बंधक मुद्रा, लिंग मुद्रा।

एसिडिटी– अपानवायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एलर्जी– ज्ञान मुद्रा, ज्ञान-ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, लिंग मुद्रा, शंख मुद्रा।

एपेन्डिक्स– शून्य मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, सूर्य मुद्रा।

एनिमिया– ज्ञान-ध्यान मुद्रा, शून्य मुद्रा।

कब्ज– पूर्ण ज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, आदिति मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा।

कफ– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, सुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

कमजोरी– पृथ्वी मुद्रा, प्राण मुद्रा।

कमर की तकलीफ– पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

• **कान की समस्याएँ–** आकाश मुद्रा, शून्य मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा।

कीडनी– अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, किडनी मूत्राशय मुद्रा, अनुशासन मुद्रा।

कोमा– ज्ञान वैराग्य मुद्रा, पुस्तक मुद्रा।

कोलेस्ट्राल बढ़ना– बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, हार्ट मुद्रा।

खाँसी– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा, लिंग मुद्रा, पुस्तक मुद्रा।

खुजली– वरुण मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, शून्य मूद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, जलोदरनाशक मुद्रा।

गाउट (वात रोग)– ज्ञान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, बंधक मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा।

गठिया– अभयज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, पुस्तक मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• **गर्दन की समस्याएँ (Cervical Spondilities)**– वायु मुद्रा, नमस्कार मुद्रा, उपाध्याय मुद्रा, मृगी मुद्रा, पंकज मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, वयन मुद्रा।

• **गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ**– ज्ञान ध्यान मुद्रा, शून्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

• **गले की समस्याएँ**– अभय ज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, पंकज मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, वयन मुद्रा।

• **घुटनों की समस्या**– वायु मुद्रा, अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, सहज शंख मुद्रा।

घबराहट– सहज शंख मुद्रा।

चक्कर आना– बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, वयन मुद्रा।

छाती में दर्द– ज्ञान मुद्रा, ज्ञान-ध्यान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, हार्ट मुद्रा।

जड़ बुद्धि (जड़ता)– प्राण मुद्रा।

जबड़े में दर्द– अभय-ज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा, आकाश मुद्रा।

जलोदर– जलोदर नाशक मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा।

टी.बी. (Tuber Culosis)– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, सहजशंख मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस– उदान मुद्रा, शंख मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, पुस्तक मुद्रा, वयन मुद्रा।

डायबीटिज– प्राण मुद्रा और अपान मुद्रा साथ में मुनि मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, सुरभि मुद्रा।

डायरिया– वायु मुद्रा, अपान मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा।

डीहाइड्रेशन (पानी की कमी)– वरुण मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, शून्य मुद्रा, आदिति मुद्रा, जलोदर नाशक मुद्रा, पंकज मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुतलाना– शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा।

थकान– प्राण मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा।

थायरॉइड– अभयज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, वयन मुद्रा, सूर्य मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, उदान मुद्रा।

दाद (Ring Worms)– बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, जलोदर नाशक मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, वरुण मुद्रा।

• **दाँतों की समस्या**– आकाश मुद्रा, अपान मुद्रा, मृगी मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा।

दुर्बलता– पृथ्वी मुद्रा।

न्यूमोनिया– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा।

नाड़ी शुद्धि– प्राण मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा।

नाभि की समस्या– शंख मुद्रा, अपान मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, सूर्य मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, सुरभि मुद्रा।

निम्न रक्तचाप– आकाश मुद्रा, प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा।

नशीले पदार्थों का सेवन– बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, जलोदर नाशक मुद्रा।

नपुंसकता– बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

पक्षाघात– ज्ञान वैराग्य मुद्रा, वायु मुद्रा, प्राण मुद्रा।

• **पाचन समस्या**– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, सुरभि मुद्रा, पंचपरमेष्ठी मुद्रा, अभय मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, हंसी मुद्रा-2।

• **पित्ताशय सम्बन्धी समस्याएँ**– ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, समन्वय मुद्रा, पंकज मुद्रा।

पोलियो– वायु मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेट में कृमि होना– शंख मुद्रा।

प्लीहा सम्बन्धी रोग– अभय ज्ञान मुद्रा, शंख मुद्रा।

पाईल्स– सहजशंख मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, आदिति मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

पार्किनसन्स रोग– वायु मुद्रा, प्राण मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा।

पित्त विकार– सुरभि मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-2।

पैरों की तकलीफ– पूर्णज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, वरुण मुद्रा।

• **फेफड़ों की समस्या–** ज्ञान मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरूण मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, बंधक मुद्रा, हार्ट मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी– अभयज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, शंख मुद्रा।

बवासीर– पूर्णज्ञान मुद्रा, आदिति मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, अनुशासन मुद्रा।

बिस्तर गीला करना– ज्ञान ध्यान मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, अनुशासन मुद्रा।

ब्लड प्रेशर– ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, बंधक मुद्रा, हार्ट मुद्रा।

• **मस्तिष्क सम्बन्धी समस्याएँ–** ज्ञान मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, मृगी मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, वयन मुद्रा, ध्यान मुद्रा।

• **मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएँ–** अपान मुद्रा, शंख मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, लिंग मुद्रा।

माइग्रेन– ज्ञान मुद्रा, अपान मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, सुरभि मुद्रा।

• **मूत्राशय सम्बन्धी समस्याएँ–** अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, उपाध्याय मुद्रा, अनुशासन मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• **यकृत सम्बन्धी समस्याएँ–** अभयज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा।

रक्त विकार– वरुण मुद्रा, प्राण मुद्रा, पंकज मुद्रा, सुरभि मुद्रा।

लकवा– वायु मुद्रा, प्राण मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा।

वायु-विकार– वायु मुद्रा, अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, ज्ञान-ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, बंधक मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, सुरभि मुद्रा।

वजन बढ़ना– पृथ्वी मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा।

• **स्नायु तंत्र की समस्या–** वरूण मुद्रा, प्राण मुद्रा, मृगी मुद्रा, पंकज मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, ध्यान मुद्रा।

सर्दी– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, आचार्य मुद्रा, बंधक मुद्रा।

सायनस– सूर्य मुद्रा, लिंग मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, मृगी मुद्रा।

सिर दर्द– अपानवायु मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, शून्य मुद्रा।

• **स्मरण शक्ति की समस्या–** ज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, सुरभि मुद्रा, वयन मुद्रा, पुस्तक मुद्रा।

• **श्वास तंत्र सम्बन्धी समस्या–** अभय ज्ञान मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा।

• **स्वर यंत्र की समस्या–** अभय ज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, वयन मुद्रा।

• **हृदय सम्बन्धी रोग–** आकाश मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, हार्ट मुद्रा, बंधक मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, प्राण मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, सहजशंख मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा।

हिचकी– अपान मुद्रा, अपानवायु मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा, शंख मुद्रा, पुस्तक मुद्रा।

हाथी पाँव– जलोदरनाशक मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानसिक रोगोपचार की मुद्राएँ

क्रोध, पागलपन, घृणा, आसक्ति, (Over Confidence) अनियंत्रण, अहंकार– पूर्णज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, वरुण मुद्रा, आदिति मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, सुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा।

नशे की लत, भावात्मक अस्थिरता, अविश्वास, अकेलापन– ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा,बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, जलोदर नाशक मुद्रा, पंकज मुद्रा, लिंग मुद्रा, किडनी मूत्राशय मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, सुरभि मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा, कामजय मुद्रा।

एकाग्रता की कमी, अविश्वास, अखुशहाल जीवन, लालच, स्वाभिमान की कमी– ज्ञान-ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, जलोदर नाशक मुद्रा, शंख मुद्रा, पंकज मुद्रा, हार्ट मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, सुरभि मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, अपान मुद्रा।

गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, निर्ममता, आत्म सम्मान की कमी, प्रेम-स्नेह की कमी– ज्ञान मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, सहज शंख मुद्रा, लिंग मुद्रा, बंधक मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, हार्ट मुद्रा, सुरभि मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, व्यान मुद्रा।

भावनाओं में रूकावट, आन्तरिक चिन्ता, अनुशासनहीनता, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, भाषा सम्बन्धी समस्याएँ– तत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा, शंख मुद्रा, सहजशंख मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, हार्ट मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, व्यान मुद्रा, वयन मुद्रा।

उन्मत्तता, मृत्युभय, आनंद की कमी, अनुत्साह, अखुशहाल जीवन– ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, हंसी मुद्रा, मृगी मुद्रा, सुरभि मुद्रा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आध्यात्मिक रोगोपचार की मुद्राएँ

क्रोध, मान, माया, लोभ, वाचालता, भय, ईर्ष्या, प्रमाद– पूर्णज्ञान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, वरुण मुद्रा, आदिति मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, सुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा।

सप्त व्यसन की लत, चंचलता, कामुकता, अभिमान– ज्ञान-ध्यान मुद्रा, बोधिसत्त्वज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, आदिति मुद्रा, जलोदर नाशक मुद्रा, पंकज मुद्रा, लिंग मुद्रा, किडनी मूत्राशय मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, अनुशासन मुद्रा, सुरभि मुद्रा, जल सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा, कामजय मुद्रा।

आत्मबल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति– ज्ञान-ध्यान मुद्रा, अभयज्ञान मुद्रा, बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा, शून्य मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा, सूर्य मुद्रा, समन्वय मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, जलोदरनाशक मुद्रा, शंख मुद्रा, पंकज मुद्रा, हार्ट मुद्रा, आशीर्वाद मुद्रा, सुरभि मुद्रा, जलसुरभि मुद्रा, पृथ्वी सुरभि मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, अपान मुद्रा।

वाणी पर अनियंत्रण, असंवेदनशीलता, निष्ठुर हृदयी, हिंसकभावना– ज्ञान मुद्रा, ज्ञान ध्यान मुद्रा, अभय ज्ञान मुद्रा, पूर्णज्ञान मुद्रा, वायु मुद्रा, वरुण मुद्रा, हंसी मुद्रा-2, सहजशंख मुद्रा, लिंग मुद्रा, बंधक मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, हार्ट मुद्रा, सुरभि मुद्रा, शून्य सुरभि मुद्रा, वायु सुरभि मुद्रा, प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, व्यान मुद्रा।

ज्ञान का अभिमान, मायाचारी, कुटिल वृत्ति– ज्ञान मुद्रा, ज्ञान वैराग्य मुद्रा, सूर्य मुद्रा, मृगी मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, प्रज्वलिनी मुद्रा, सुरभि मुद्रा, वयन मुद्रा।

मृत्यु भय, स्वरमणता की कमी, अनुत्साह, आनंद की कमी– ज्ञान वैराग्य मुद्रा, तत्त्वज्ञान मुद्रा, आकाश मुद्रा, हंसी मुद्रा-1, मृगी मुद्रा।

समाहार रूप में कहा जा सकता है कि मानव शरीर एक स्वसंचालित यंत्र है। इसके द्वारा जब जैसी आवश्यकता हो वैसा परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। मानव शरीर रूपी भवन में वह सभी सुविधाएँ मौजूद है जिनके द्वारा जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आनंद प्राप्त किया जा सकता है। Temperature Management हो या Memory Storing या फिर पुरानी घटनाओं का Rewind और Forward, यह सभी सुविधाएँ हमारे शरीर में उपलब्ध है। परन्तु इन सभी के उपयोग एवं नियंत्रण की विधि से प्राय: जनवर्ग अज्ञात है। मुद्रा विज्ञान हमें इन सभी के नियमन (Operation) की कला सिखाता है। आज के प्रदूषण एवं अशुद्ध खान-पान युक्त जीवन में यह साधना जन साधारण को दोषमुक्त करेगी। साथ ही एक स्वस्थ, सदाचारी, सकारात्मक समाज की संरचना में सहायक बनेगी।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	मुद्रा विज्ञान	नीलम संघवी	501-अरिहंत बिल्डिंग, अंधेरी (वेस्ट)	2000
2.	हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम	मुनि किशनलाल	जैन विश्व भारती, लाडनूं	2001
3.	शारदा तिलक	संपा. आर्थर एवलोन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	
4.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली	1966
5.	प्रपंचसार सार संग्रह (उत्तर भाग)	रचित गोर्वाणेन्द्र सरस्वती	श्रीरंगम्	1980
6.	मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ	केशवदेव	न्यू दिल्ली	1996

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छठ्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

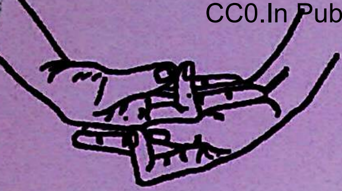

सज्जन मन की बात सज्जनों के लिए

- मुद्रा प्रयोग के लिए कुछ विशिष्ट नियम?
- मुद्रा योग द्वारा कैसे किया जाए शारीरिक तंत्रों का संतुलन?
- आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राएँ जानिए और साधिए?
- वर्तमान समय में मुद्रायोग लाभकारी कैसे?
- किस रोग में कौनसी मुद्रा लाभदायी?

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,
E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XXI)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi